भारतीय ग्रन्थमाला, संख्या १४

राष्ट्रमंडल शासन

['ब्रिटिश साम्राज्य शासन' का नया रूप]

लेखक

दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल-एल० बी०

अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

और

भगवानदास केला

रचयिता, भारतीय शासन, देशी राज्य शासन, आदि

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

मुद्रक

गयाप्रसाद तिवारी बी० काम०, नारायण प्रेस, प्रयाग

चौथा संस्करण] सन् १९४९ ई० [मूल्य डेढ़ रुपया

इस पुस्तक के संस्करण

पहला संस्करण	१२५० प्रतियाँ	सन् १९२९ ई०
दूसरा ,,	३०० ,,	,, १९४३ ,,
तीसरा ,,	७५० ,,	,, १९४५ ,,
चौथा ,, (राष्ट्रमंडल शासन)	१००० ,,	,, १९४९ ,,

निवेदन

प्रथम योरपीय महायुद्ध के बाद ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, यह अनुभव होता गया कि युद्ध के समय जो छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता या स्वभाग्य-निर्णय आदि की बातें की गई थीं, उनमें कुछ दम न था; वे ज्यादहतर कूटनीति की चालें थीं। जो राजनीतिज्ञ कुछ ईमानदारी से विश्व-शान्ति की कोशिश करना चाहते थे, उनकी कुछ चली नहीं। धीरे-धीरे यह धारणा हो गई कि संसार अभी बहुत-कुछ पुराने ढर्रे पर ही चलेगा, उसमें पराधीन या गुलाम देश भी रहेंगे, रङ्ग और जाति का भेद भी रहेगा, और हाँ, साम्राज्य भी अभी तो रहने वाले ही हैं। ऐसी परिस्थिति में हमने संसार के सबसे बड़े साम्राज्य की शासन-पद्धति का परिचय देने के लिए, सन् १९२९ में यह पुस्तक पहली बार लिखी और प्रकाशित की थी।

हिन्दी संसार ने इस पुस्तक के पहले संस्करण को खपाने में चौदह वर्ष लगा दिए। इस समय दूसरा योरपीय महायुद्ध लोगों को परेशान कर रहा था। दूसरी चीजों के साथ कागज की भी बड़ी कठिनाई थी। तो भी हमने उन पाठकों का विचार करके जो ऐसे साहित्य की कदर करते हैं, सन् १९४३ में, आवश्यक संशोधन करके, इस की थोड़ी सी प्रतियाँ छपाईं। पीछे सन् १९४५ में इसका तीसरा संस्करण हुआ।

समय परिवर्तनशील है। दूसरे महायुद्ध के समय तक अंगरेज़ इस बात का गर्व करते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य पर सूर्य कभी अस्त नहीं होता, और श्री चर्चिल ने कहा था कि मैं साम्राज्य का अन्त करने के लिए सम्राट् का प्रधान मंत्री नहीं बना हूं। पर उन्हीं चर्चिल महोदय

को अपने जीवन-काल में यह देखना पड़ा कि ब्रिटिश साम्राज्य से पहले साम्राज्य शब्द निकल कर वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल हुआ और पीछे भारत, पाकिस्तान और लंका के, सदस्य होने के साथ ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में से ब्रिटिश शब्द भी निकल गया और इस प्रकार उसकी अंगरेजी प्रभुता समाप्त हो गई। जिस एशिया के निवासियों के प्रति गोरे लोगों की लघुता-सूचक भावना रहती आई थी, आज उसके तीन राज्य राष्ट्रमंडल में बराबरी के पद पर विराजमान हैं, और भारत बादशाह के प्रति राजभक्ति न रखता हुआ भी इंगलैंड आदि के सम्मान का अधिकारी है।

अस्तु, राष्ट्रमंडल के शासन का परिचय देने के लिए अब इस पुस्तक का संशोधित रूप पाठकों के सामने उपस्थित है। इसके दूसरे खंड का अधिकांश विषय नया लिखा गया है। अन्त में यह भी विचार किया गया है कि राष्ट्रमंडल में अभी क्या न्यूनताएँ या कमजोरियाँ हैं, जिनके दूर होने पर यह विश्व-संघ के निर्माण की दिशा में अच्छा सहायक हो सकता है। आशा है, पाठक इससे यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

विनीत

भगवानदास केला

विषय सूची

पहला खण्ड

ब्रिटिश संयुक्त राज्य

दूसरा खंड

राष्ट्रमंडल के अन्य भाग

पहला खंड

ब्रिटिश संयुक्त राज्य

पहला परिच्छेद

विषय प्रवेश

विशेष सूचना—*'राष्ट्रमंडल' ('कामनवेल्थ-आफ-नेशन्स' या संक्षेप में 'कामनवेल्थ') ब्रिटिश साम्राज्य का नया नाम है। यह उसे अक्तूबर १६४८ से प्राप्त है। इसके सम्बन्ध में खुलासा विचार इस पुस्तक के दूसरे खंड में किया गया है।*

शासन सम्बन्धी ज्ञान का महत्व—एक भारतीय विद्वान का कथन है कि सब धर्मों का प्रवेश राज-धर्म में हो जाता है। आजकल इस कथन की सत्यता, थोड़ा विचार करने पर, भली भांति मालूम हो सकती है। हरेक देश की आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक उन्नति के विविध कार्यों का प्रत्यक्ष या गौण रूप से राजनीति से सम्बन्ध होता है। नागरिक जीवन की रोजमर्रा की बहुत सी बातें ऐसी होती हैं, जिनमें उनके देश की शासनपद्धति, अनुकूल होने से, बहुत सहायक हो सकती है; और प्रतिकूल होने से, यह बहुत बाधक भी बन सकती है। किसी नागरिक का यह कहना ठीक नहीं है कि हम राजनीति में भाग नहीं लेते। सरकार के बनाए हुए कानूनों पर उन्हें अमल करना ही पड़ता

है। सरकारी कर (टैक्स) उन्हें देने ही होते हैं, अपने भले या बुरे व्यवहार से, चाहे अप्रकट रूप में ही क्यों न हो, वे सरकार को शासन सम्बन्धी नए नियमों के निर्माण के लिए, अथवा पुराने कानूनों के परिवर्तन या संशोधन के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक, किसी-न-किसी अंश में राजनीति से सम्बन्ध अवश्य रखता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हरेक नागरिक, पुरुष हो या स्त्री, युवक हो या वृद्ध, शासन सम्बन्धी विषयों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करे, और उन्हें भली भांति अध्ययन और मनन करे, जिससे वह इस दिशा में अपने कर्तव्यों का उचित रीति से पालन कर सके।

राष्ट्रमंडल का शासन जानने की आवश्यकता—हमें अपने ही देश का नहीं, भिन्न-भिन्न देशों की शासनपद्धतियों का ज्ञान होना चाहिए। इससे हम यह सोच सकेंगे कि किस शासनपद्धति की कौनसी बात ऐसी है, जिसके, हमारे देश में, जारी हो जाने से हमारा कल्याण होगा; तथा, कौनसे नियम हमारे लिए हानिकारक होंगे। यदि अवकाश के अभाव से हम बहुत से देशों की शासनपद्धतियों का ज्ञान प्राप्त न कर सकें, तो कम-से-कम ऐसे देशों के विषय में तो हमें अवश्य ही ज्ञान होना चाहिए, जिनसे हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है।

उदाहरण के लिए, पाठक जानते हैं कि वर्तमान अवस्था में भारतवर्ष जिस राष्ट्रमंडल का एक सदस्य है, उसका एक सदस्य इंगलैंड है, और इंगलैंड का बादशाह उसका अध्यक्ष है। भारतवर्ष ने प्रजातंत्र राज्य बनने का निश्चय करने पर भी इंगलैंड के बादशाह को राष्ट्रमंडल की एकता का प्रतीक स्वीकार किया है। भारतवर्ष की शासनपद्धति कई महत्वपूर्ण बातों में इंगलैंड, तथा राष्ट्रमंडल के स्वाधीन राज्यों के ढंग की है। राष्ट्रमंडल के पराधीन भागों से भी भारतवर्ष का बहुत सम्बन्ध है; उनके कई स्थानों में तो कितने ही भारतीय निवास करते हैं, तथा कुछ वहाँ जाते-आते रहते हैं। इस प्रकार राष्ट्रमंडल के सभी भागों से हमारा सम्बन्ध है, और उन सब की शासनपद्धति का ज्ञान प्राप्त करना

हमारे लिए उपयोगी तथा आवश्यक है।

शासन के विचार से राष्ट्रमंडल के दो भाग किए जा सकते हैं—(१) ब्रिटिश संयुक्तराज्य, और (२) राष्ट्र-मंडल के अन्य देश ; जैसे केनेडा, दक्षिण अफ्रीका का यूनियन, और आस्ट्रेलिया आदि। इस पुस्तक के पहले खंड में ब्रिटिश संयुक्त राज्य की शासनपद्धति का विचार किया जाता है।

ब्रिटिश संयुक्तराज्य—ब्रिटिश संयुक्त राज्य में ग्रेट-ब्रिटेन (इंगलैंड, वेल्ज़, स्काटलैंड) और उत्तरी आयर्लैंड, तथा मानद्वीप और खाड़ी के द्वीप सम्मिलित हैं। साधारण बोलचाल में इंगलैंड कहने से भी इस सब भू-भाग का आशय लिया जाता है। साधारण आदमियों की यह धारणा होती है कि ब्रिटिश संयुक्त राज्य कोई बहुत बड़ा राज्य होगा, लेकिन असल में यह बात नहीं है। क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से ब्रिटिश संयुक्तराज्य बहुत साधारण सा है; वह भारतवर्ष के संयुक्तप्रांत से भी छोटा है। इसका क्षेत्रफल लगभग ९५ हजार वर्गमील है और सन् १९४१ में उसकी जनसंख्या लगभग चार करोड़ सा ठलाख थी।

योरपीय महाद्वीप के पश्चिम भाग में चहुँ ओर समुद्र से सुरक्षित, ग्रेट-ब्रिटेन एक टापू है। इसके दक्षिण भाग में इंगलैंड और वेल्ज़ हैं, तथा उत्तरी भाग में कुछ ऊँचे पहाड़ों से परे स्काटलैंड है।

ग्रेट-ब्रिटेन के पास आयर्लैंड नाम का टापू है। इस टापू का उत्तरी भाग यानी उत्तरी आयर्लैंड ब्रिटिश संयुक्तराज्य में शामिल है। खासकर इंगलैंड का, किनारा काफी कटा हुआ है। यहाँ कई बन्दरगाह बहुत उत्तम हैं। नदियों की गति भी जहाज़ों के जाने-आने के लिए बहुत अनुकूल है।

ब्रिटिश संयुक्तराज्य योरप, अमरीका और अफ्रीका के बीच में ऐसे मौके की जगह पर है कि भिन्न-भिन्न देशों का व्यापारिक माल इस राज्य के पास से गुजरता है, और सब जगहों का माल यहाँ आसानी

से आ सकता है। इस तरह यह राज्य समुद्रों के चौराहे पर है। इन कारणों से इस राज्य के निवासियों को संसार के भिन्न-भिन्न देशों से व्यापार करके लाभ उठाने की बड़ी सुविधा मिली है। इस राज्य की भौगोलिक स्थिति राष्ट्रमंडल (ब्रिटिश साम्राज्य) के निर्माण में भी बहुत सहायक हुई है; इसका विशेष विचार आगे किया जायगा।

दूसरा परिच्छेद

ऐतिहासिक परिचय

ब्रिटिश संयुक्तराज्य की शासनपद्धति का वर्णन आरम्भ करने से पहले हमें यह विचार कर लेना चाहिए कि इस राज्य के भिन्न-भिन्न भाग कब और किस प्रकार आपस में मिले। पहले इंगलैंड को लेते हैं।

इंगलैंड का एकीकरण—अंगरेज़ों का इतिहास पांच-दस हज़ार वर्ष का नहीं है। यह डेढ़ हज़ार वर्ष से भी कम का है। उससे पहले अंगरेज़ जाति नहीं थी; इंगलैंड के मूल निवासी 'ब्रिटेन', कहलाते थे। उन पर रोम वालों का राज्य था। रोम वालों ने ईसा से ५५ वर्ष पहले वहाँ राज्य करना आरम्भ किया था और लगभग साढ़े चार सौ वर्ष राज्य किया; उन्होंने वहां के मूल निवासियों की बहुत-कुछ उन्नति की, परन्तु उन्हें सदैव परावलम्बी बनाकर रखा, आत्म-रक्षा के लिए शस्त्र रखने की अनुमति नहीं दी। इसका परिणाम यह हुआ कि जब पाँचवीं सदी में रोम पर उत्तरी योरप की असभ्य जातियों ने आक्रमण किया और इंगलैंड में रहनेवाले रोमन लोग अपने देश में लौट आए, तो बेचारे ब्रिटेन असहाय रह गए। सन् ४४६ ई० में पश्चिमी योरप की एल्ब नदी के किनारे रहनेवाले 'ज्यूट' लोगों ने आकर प्रथम बार इंगलैंड के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। पीछे धीरे-धीरे पश्चिम योरप से ही 'ऐंगल' और 'सेक्सन' लोग आए और भिन्न-भिन्न भागों पर

अधिकार करके अलग-अलग राज्यों की स्थापना करने लगे। उपर्युक्त तीन जातियों के आदमी कुछ समय परस्पर में लड़ते-भिड़ते रहे। आठवीं सदी के अन्त में इनके सात जुदा-जुदा राज्य थे। सन् ८२७ ई० में एग्बर्ट नाम का बादशाह सारे इंगलैंड में सर्वोच्च अधिकारी मान लिया गया। यद्यपि उस समय भी कई भागों में अलग-अलग बादशाह थे, उस वर्ष से इंगलैंड एक राज्य समझा जाने लगा। 'इंगलैंड' शब्द का अर्थ है, 'एंग्लो की भूमि'।

अँगरेज़ या एंग्लो-सेक्सन जाति — नवीं सदी में डेनमार्क (और नार्वे) से आकर 'डेन' लोगों ने इंगलैंड पर आक्रमण किया, और अन्त में सन्धि करके कुछ भाग में अपना राज्य स्थापित कर लिया। ग्यारहवीं सदी में 'नार्मन' लोग इंगलैंड पर आक्रमण करने लगे। नार्मेंडी (फ्राँस) के ड्यूक विलियम ने यहाँ सन् १०६६ में विजय प्राप्त की, और सब भूमि पर अधिकार कर लिया; वह बादशाह बन गया। इस घटना से, तथा इसके पश्चात्, नार्मन लोगों की अच्छी संख्या इंगलैंड में आ गई और यहाँ रहने लगी। ये लोग उसी जाति के थे, जिनके, पूर्वोक्त 'डेन' लोग थे। बादशाह से जमीन पाकर ये बड़े-बड़े सरदार बन गए। इंगलैंड के वर्तमान सरदार घरानों के आदमी प्रायः इन्हीं के वंशज हैं।

उपर्युक्त सब जातियों—ज्यूट, एंगल, सेक्सन, डेन और नार्मन—के परस्पर मिलजाने से अँगरेज़ (इंगलिश) जाति बनी है। इसे एंग्लो-सेक्सन भी कहते हैं; असल में यह शब्द पहले आई हुई एंगल और सेक्सन जातियों के मेल को जाहिर करनेवाला है। नार्मनों के बाद इंगलैंड किसी विदेशी जाति के अधिकार में नहीं आया।

वेल्ज की विजय — जब ब्रिटनों पर सेक्सन आदि जातियों के आक्रमण हुए तो उनमें से कुछ तो खाड़ी पार करके 'गाल' (फ्राँस) चले गए थे, और कुछ ने वेल्ज़ के जंगलों में शरण ली थी। वेल्ज़ में अब भी उन प्राचीन ब्रिटेनों के वंशज रहते हैं, ये अभी तक अपनी

पुरानी भाषा का भी व्यवहार करते हैं। अस्तु, तेरहवीं सदी के अन्त में वेल्ज़ को विजय करके इंगलैंड के राज्य में मिला लिया गया। तब से इंगलैंड के बादशाह का बड़ा लड़का 'वेल्ज़ का राजकुमार' या 'प्रिंस-आफ-वेल्ज़' कहलाता है। दूसरे योरपीय महायुद्ध के पहले तक वेल्ज़ के लिए स्वतन्त्र पार्लिमेंट स्थापित करने का आन्दोलन चल रहा था।

स्काटलैंड का मेल—इंगलैंड और स्काटलैंड के बीच में ऊँचे पहाड़ होने से, आरम्भ में बहुत समय तक, इन देशों में आपसी सम्बन्ध बहुत कम रहा। कई बार इस बात का यत्न किया गया कि ये दोनों राज्य मिल जायँ। सन् १६०३ में इंगलैंड की महारानी एलिज़बेथ का देहान्त हो जाने पर, स्काटलैंड का बादशाह ही निकटतम उत्तराधिकारी होने के कारण, इंगलैण्ड का भी बादशाह बना। स्काटलैंड में वह 'जेम्स छठा' कहलाता था; इंगलैंड में उसका नाम 'जेम्स पहला' रहा। इस प्रकार दोनों राज्यों का एक ही बादशाह होगया, परन्तु दोनों की शासन-व्यवस्था तथा क़ानून जुदा-जुदा रहे। धीरे-धीरे इस नीति की हानियाँ मालूम होती गयीं, तथापि दोनों राज्यों में पारस्परिक मनोमालिन्य रहने के कारण, इनका मेल न हो सका। अन्त में १७०७ ई० के क़ानून से दोनों राज्य मिलाए गए। दोनों की नई सम्मिलित पार्लिमेंट का नाम 'ब्रिटिश पार्लिमेंट' हो गया। स्काटलैंड में भी वेल्ज़ की तरह दूसरे योरपीय महायुद्ध आरम्भ होने से पहले, स्वतन्त्र पार्लिमेंट स्थापित करने का आन्दोलन चल रहा था।

अस्तु, यह स्पष्ट है कि इङ्गलैंड और स्काटलैंड को परस्पर में मिले, अभी ढाई सौ वर्ष भी नहीं हुए। इन दोनों देशों का संयुक्त नाम 'ग्रेट-ब्रिटेन' है। ग्रेट का अर्थ बड़ा या महान् है।

उत्तरी आयलैंड—ग्रेट-ब्रिटेन के पास आयलैंड एक अलग टापू है। इन दोनों के बीच में आयरिश सागर है; इसलिए आरम्भ में बहुत समय तक, इन दोनों के निवासियों का मिलना-जुलना कम रहा। इसके अतिरिक्त इंगलैंड, आयलैंड को अपने से छोटे दर्जे का मानता

था। उसने महारानी ऐलिजबेथ के समय में उसे जीत लिया। पश्चात् सन् १७१९ ई० में ब्रिटिश पार्लिमेंट ने आयर्लैंड के लिए कानून बनाने के सम्बन्ध में अपने अधिकार की घोषणा की, परन्तु दोनों राज्यों के आपसी झगड़ों के कारण ये अलग-अलग ही रहे। सन १७८२ ई० में आयर्लैंड की अलग पार्लिमेंट हो गयी। अठारहवीं सदी के अन्त तक वह राज्य अपना शासन स्वयं करता रहा। सन् १८०१ ई० में आयर्लैंड की अलग पार्लिमेंट रहना बन्द हो गई और वह ग्रेट-ब्रिटेन की पार्लिमेंट में मिल गई। उसी में आयर्लैंड के प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित कर दी गई। दोनों राज्यों का बादशाह भी एक ही हो गया। उन्नीसवीं सदी के अन्त में वहाँ 'होम-रूल' आन्दोलन होने लगा, जिससे अन्त में सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पश्चात्, केवल उत्तरी आयर्लैंड की पर्लिमेंट ही ब्रिटिश पार्लिमेंट के अधीन रही और शेष आयर्लैंड का 'आयरिश फ्री स्टेट, के नाम से एक अलग राज्य हो गया। सन् १९३७ में आयरिश फ्री स्टेट ने अपना पुराना नाम 'आयर' ग्रहण किया और अपने-आपको प्रजातंत्र घोषित किया। इस राज्य के अन्दरूनी मामलों में बादशाह का कुछ सम्बन्ध नहीं रहा। विदेश-नीति सम्बन्धी कुछ बातों में बादशाह आयर के मन्त्रियों की सलाह लेकर आवश्यक करवाई करता रहा। सन् १९४९ में आयर ने बाहरी मामलों में भी इंगलैंड के बादशाह का सम्बन्ध न रखने का निश्चय कर लिया। वह उत्तरी आयर्लैंड को भी ब्रिटिश पर्लिमेंट के प्रभुत्व से मुक्त करके अपने साथ मिलाने का प्रयत्न कर रहा है।

अस्तु, इस विवेचन से यह मालूम हो गया कि किस प्रकार ब्रिटिश संयुक्तराज्य के भिन्न भिन्न भाग मिलने पर वह एक राज्य बना। अगले परिच्छेद से हम इस राज्य की शासनपद्धति का वर्णन आरम्भ करते हैं।

तीसरा परिच्छेद

अँगरेजी शासनपद्धति की विशेषताएँ

अँगरेज चाहते हैं कि उनके देश की राज्यपद्धति का विकास, वैधानिक विकास की भांति, स्वाभाविक रूप से हो। वे यह अधिक पसन्द करते हैं कि उस समय तक कोई परिवर्तन न किया जाय जब तक वह अनिवार्य न हो जाय और परम्परावादी भी उसकी अनिवार्यता स्वीकार न करलें। —अर्नेस्ट एटकिंसन

किसी-किसी देश की शासनपद्धति में कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो प्रायः दूसरे देशों की शासनपद्धतियों में कम पायी जाती हैं। जिस देश में ऐसा हो, उसकी शासनपद्धति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन बातों को भली-भांति समझ लेना उचित है। इङ्गलैंड की शासनपद्धति में तीन बातें ऐसी हैं, जिन्हें हम उसकी विशेषताएँ कह सकते हैं।

१—बादशाह शासन-कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं है——यद्यपि प्रकट रूप से समस्त शासन-कार्य बादशाह के नाम से होता है, पर वास्तव में बादशाह अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं करता। कानून बनाने तथा शासन और न्याय करने के लिए अँगरेजी शासन-पद्धति के अनुसार पार्लिमेंट, मन्त्रिमण्डल तथा न्यायाधीश उत्तरदायी है, और, बादशाह केवल इन संस्थाओं के आदेशानुसार काम करता है।

अँगरेजी शासनपद्धति का एक सिद्धान्त यह है कि बादशाह ग़लती नहीं कर सकता। इसका अभिप्राय यह है कि वह किसी भी सरकारी

कार्य का उत्तरदाता नहीं माना जाता। सब कार्यों के उत्तरदाता मंत्री ही होते हैं, और उनकी सम्मति के अनुसार ही बादशाह काम करता है। हाँ, बादशाह एक काम अपनी इच्छा के अनुसार करता है, वह काम है, प्रधान मंत्री का चुनाव। परन्तु इस कार्य की भी एक सीमा रहती है। बादशाह को इस पद के लिए ऐसा ही आदमी चुनना होता है जो 'कामन्स' (जनसाधारण) सभा के अधिकांश सदस्यों को अपनी नीति के पक्ष में रख सके।

२—यह शासनपद्धति परिवर्तनशील है—अँगरेजी शासनपद्धति की दूसरी विशेषता यह है कि यद्यपि उसके कुछ नियम ऐसे भी हैं, जिन्हें इंगलैंड की कामन्स सभा ने बनाया है, उसके अधिकाँश नियम इस प्रकार के हैं, जो किसी ख़ास समय में इस सभा द्वारा नहीं बनाये गये; ये रीति-रिवाज़ पर निर्भर हैं और इनके अनुसार वहाँ परम्परा से काम होता आ रहा है। देश के लिखित कानून में उनका समावेश नहीं है। इसका कारण यह है कि इंगलैंड के प्रतिनिधि तथा अन्य अधिकारी किसी खास समय यह निश्चय करके नहीं बैठे कि आओ अपने देश के राज़प्रबन्ध के लिए इस-इस विषय के क़ानून बनावें, अब से इस देश का शासन इस नयी पद्धति के अनुसार होना चाहिए। अँगरेजी शासन-पद्धति के बहुत से नियमों को अपने वर्तमान रूप में आने के लिए यथेष्ट समय लगा है। इस प्रकार अँगरेजी शासनपद्धति का धीरे-धीरे विकास हुआ है, इसकी स्वाभाविक वृद्धि हुई है। आवश्यकता होने पर इसमें परिवर्तन आसानी से हो सकता है, उसके लिए घोर आन्दोलन नहीं करना पड़ता।

इसीलिए यहाँ की शासनपद्धति को परिवर्तनशील कहा जाता है। यह अमरीका आदि देशों की शासनपद्धतियों की भांति अपरिवर्तनशील नहीं है। यहाँ शासनपद्धति सम्बन्धी नियमों में सुधार करने के लिए विशेष बन्धन नहीं है। मंत्रिमंडल आवश्यकतानुसार उसके संशोधन का प्रस्ताव कर सकता है। इससे उसमें एक-दम महान परिवर्तन भी हो

सकता है। व्यवहार में, मंत्रिमंडल या पार्लिमेंट लोकमत से आगे नहीं बढ़ सकती, और लोकमत प्रायः सहसा नहीं बदलता।

अस्तु, मंत्रिमंडल के प्रस्तावों के अतिरिक्त, न्यायालयों के निर्णय भी यहाँ शासनपद्धति बदलने में सहायक होते हैं। पार्लिमेंट के बनाए हुए क़ानूनों का अर्थ लगाने में मतभेद उपस्थित होने की दशा में उसका निर्णय न्यायालय करते हैं। इससे उन कानूनों पर न्यायालयों के निर्णयों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार शासनपद्धति में धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ करते हैं, जो बहुधा उस समय तो कुछ विशेष महत्व के मालूम नहीं होते परन्तु पीछे जाकर उनसे किसी-किसी विषय का कायापलट सा ही हो जाता है।

शासनपद्धति की परिवर्तनशीलता से इंगलैंड को एक बड़ा लाभ यह है कि यहाँ जनता की इच्छानुसार सुधार होने की सम्भावना बनी रहती है, इससे प्रायः जनसाधारण को क्रान्ति की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उन्होंने समझ लिया है कि जैसा लोकमत होगा, वैसा नियम पार्लिमेंट में बन जायगा। इसलिए वे जब जैसा कानून बनवाना चाहते हैं, उसके अनुसार लोकमत तैयार करने तथा जनता को शिक्षित करने में लग जाते हैं। यदि वे ऐसा करने में सफल न हों अर्थात् वे लोगों को अपने अभीष्ट नियमों की उपयोगिता न समझा सकें तो वे जान लेते हैं कि उस विषय की क्रान्ति में जनता हमारे साथ न होगी, और इसलिए क्रान्तिकारी उपायों से भी सफलता न होगी। यही कारण है कि इंगलैंड के इतिहास में यह बात ख़ास तौर से देखने में आती है कि यह देश राजनैतिक क्रान्तियों और उथल-पुथल के झगड़ों से प्रायः मुक्त रहा है। वास्तव में इंगलैंड की शासनपद्धति का इतिहास बादशाह की शक्ति कम होकर, उस शक्ति के, प्रजा के हाथ में जाने का इतिहास है; और, यह कार्य क्रमशः प्रायः मंज़िल-दर-मंज़िल, और अधिकांश में बिना खून बहाये, हुआ है।

३—यह शासनपद्धति अलिखित है—अमरीका आदि की

शासन-पद्धति 'लिखित' कही जाती है; इसके विपरीत, इंगलैंड की 'अलिखित' मानी जाती है। लिखित शासनपद्धति से अभिप्रायः उस शासनपद्धति से होता है, जिसके अधिकतर क़ानून किसी विशेष समय बनाये जाकर, लिखे हुए रहते हैं। अलिखित शासनपद्धति से उस शासनपद्धति का बोध होता है, जो राज्य की रीति-रस्म, रिवाज, रूढ़ि या परम्परा के आधार पर बनी होती है, जिसके क़ानून सर्वसाधारण में, लोकमत के अनुसार होने से ही, मान लिए जाते हैं। इन क़ानूनों में से कुछ, सुभीते के लिए, लिख भी लिए जाते हैं; तो भी शासनपद्धति अलिखित ही कही जाती है। यहाँ के कुछ महत्वपूर्ण क़ानून पार्लिमेंट द्वारा खास-खास समय पर स्वीकृत किये जाकर लिखे हुए हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इस शासनपद्धति में रिवाज या रूढ़ि का विशेष भाग है।

चौथा परिच्छेद

बादशाह और प्रिवी कौंसिल

बादशाह के उत्तराधिकार का नियम—नार्मन लोगों की विजय (सन् १०६६ ई०) से पहले यहाँ बादशाह (वह पुरुष हो या स्त्री) प्रायः निर्वाचित होता था, परन्तु वह शाही परिवार के आदमियों में से ही चुना जाता था। उस वर्ष से जागीरदारी प्रथा आरम्भ हो गई और यह विचार बल पकड़ता गया कि अन्य जागीर की भांति राजगद्दी भी वंशानुक्रम से मिलनी चाहिए। सोलहवीं सदी में वंशानुक्रम अधिकार की अपेक्षा निर्वाचन-सिद्धान्त की विजय अधिक रही। सन् १६४६ ई० में बादशाह चार्ल्स-पहले को प्राणदंड देने के पश्चात् ग्यारह वर्ष बिना बादशाह के काम चलाकर, १६६० में बादशाह का पद फिर कायम किया गया। सन् १६८६ में बादशाह जेम्स-पहले को निकालकर,

उसकी जगह विलयम-तीसरे को गद्दी पर बैठाया गया, और अन्त में १७०१ में उत्तराधिकार-कानून बना दिया गया, जिससे यह तय हो गया कि इंगलैंड में बादशाहत का अधिकार वंशानुक्रम से माना जाता है, परन्तु कोई बादशाह तभी तक राज्य कर सकता है, जब तक पार्लिमेंट उसे चाहे।

बादशाह के उत्तराधिकार-कानून को 'सेटलमेंट एक्ट' कहते हैं। इससे यह निश्चय किया गया था कि राज्य बादशाह जेम्स-पहले की पोती, सोफिया के वंशजों को मिले। इस कानून के अनुसार ब्रिटिश राजसिंहासन का अधिकार पैत्रिक अर्थात् वंशागत है। बादशाह का पद किसी को गुण कर्मानुसार नहीं दिया जाता। किसी बादशाह के मरने पर उसके सब से बड़े लड़के को राजगद्दी मिलती है। यदि सब से बड़ा लड़का जीवित न हो तो उसके सबसे बड़े लड़के को (और लड़का न होने की दशा में लड़की को) राजगद्दी पाने का अधिकार होता है। यदि बादशाह के बड़े लड़के की कोई सन्तान न हो, तो बादशाह का दूसरा लड़का, और उसके जीवित न होने पर उसकी सन्तान अधिकारी होती है। यदि बादशाह का कोई लड़का या उसकी सन्तान जीवित न हो तो बादशाह की सब से बड़ी लड़की या उसकी सन्तान अधिकारिणी होती है। परन्तु शर्त यह है कि प्रत्येक राज्याधिकारी को गद्दी पर बैठते समय यह शपथ लेनी होती है कि वह प्रोटेस्टेंट मत का ईसाई है। यदि वह रोमन केथलिक मत का ईसाई, या किसी अन्य धर्म का अनुयायी हो तो वह राज्याधिकार से वञ्चित कर दिया जाता है।

बादशाह के अधिकार—बादशाह के अधिकार दो प्रकार के होते हैं:—(१) जो उसे कानून द्वारा प्राप्त हैं; (२) जो उसे बिना कानून ही, बादशाह होने की हैसियत से, प्राप्त हैं। कानून द्वारा प्राप्त अधिकार परिमित हैं; इनके कुछ उदाहरण ये हैं—ऐसे विषयों के सम्बन्ध में नियम बनाना, जिनके लिए उसे कानून से अधिकार दिया गया है; अपने और अपने परिवार के खर्च के लिए पार्लिमेंट द्वारा स्वीकृत रकम

प्राप्त करना। जो अधिकार उसे बिना कानून, बादशाह होने की हैसियत से प्राप्त है, उनके अनुसार वह यदि चाहे तो, पार्लिमेंट की अनुमति बिना ही, सेना के हथियार रखवा सकता है, सरकारी नौकरों को बर्खास्त कर सकता है, युद्ध और सन्धि कर सकता है, साम्राज्य के किसी भी निवासी को 'लार्ड' बना सकता है, अपराधियों को क्षमा प्रदान कर सकता है। इस प्रकार अँगरेज़ी शासनपद्धति के अनुसार चलता हुआ भी, बादशाह कई ऐसे कार्य कर सकता है, जिनसे देश की आन्तरिक उन्नति में तथा उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बहुत बाधा पहुँचे। परन्तु वास्तव में जैसा कि पहले कहा गया है, आजकल वह कोई भी कार्य केवल अपनी इच्छा के अनुसार नहीं करता; वह अपने अधिकारों को, अपने मन्त्रियों की सलाह बिना अमल में नहीं लाता। बादशाह जो भाषण देता है, वह भी प्रधान मन्त्री या अन्य मन्त्रियों द्वारा लिखा होता है; उसका अन्य राज्यों से जो पत्र-व्यवहार होता है, वह भी मन्त्रियों से छिपा नहीं रहता। बादशाह अपना विवाह भी मन्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध नहीं कर सकता।

बादशाह के कार्य—बादशाह अपने कार्य, प्रधान मन्त्री की सलाह के अनुसार करता है, उनमें से मुख्य-मुख्य निम्नलिखित हैं:—(१) मन्त्रियों की नियुक्ति करना। (२) प्रति वर्ष पार्लिमेंट का उद्घाटन करना। (३) पार्लिमेंट के अधिवेशन को समाप्त करना। (४) पार्लिमेंट द्वारा स्वीकृत कानूनी मसविदा को स्वीकार करके, उन्हें कानून का रूप देना (५) प्रधान अधिकारियों तथा न्यायाधीशों को नियत करना। (६) पदाधिकारियों की नियुक्ति करना। (७) पार्लिमेंट में भाषण देना। (८) अपराधियों को क्षमा करना, और (९) बड़ी-बड़ी उपाधियाँ तथा पदवियाँ देना इत्यादि।

शासनपद्धति में बादशाह का स्थान—यद्यपि बादशाह सब काम मन्त्रियों के परामर्श से करता है तथापि शासनपद्धति में उसका कुछ-न-कुछ महत्व रहता ही है। वह मन्त्रियों को आवश्यकतानुसार

प्रोत्साहन या चेतावनी देता है। अपने अधिकारों का उचित रूप से उपयोग करके महारानी विक्टोरिया और जार्ज पञ्चम जैसे बादशाह इंगलैंड के शासन-कार्य में बड़ा प्रभाव डालते रहे हैं। मंत्रिमंडल बनते हैं और बदलते हैं, मन्त्री आते और जाते हैं, परन्तु बादशाह स्थायी है, वह शासन-कार्य की शृङ्खला बनाए रखता है। वह राज्य के विविध रहस्यों को जानता है, और शासन-नीति के व्यवहार के सम्बन्ध में उसका अनुभव प्रायः मन्त्रियों की अपेक्षा अधिक होना स्वाभाविक ही है। विशेषतया विदेशों सम्बन्धी विषयों में उसका प्रभाव बहुत ही पड़ता है। यह कहा जा सकता है कि समझदार बादशाह का प्रभाव, केवल प्रधान मंत्री को छोड़कर और सब व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक रहता है। यही कारण है कि इंगलैंड में यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से बादशाह के अधिकार क्रमशः कम होते गये हैं, परन्तु इसके साथ ही जनता में उसका आदर-मान बढ़ता गया है। बादशाह ही राष्ट्रमंडल की एकता का प्रत्यक्ष चिह्न या निशान है।

स्वयं अपनी इच्छानुसार बादशाह शासन-कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करता। पार्लिमेंट का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि अब बादशाह कोई ऐसा कार्य करने का साहस नहीं करता, जो पार्लिमेंट के विचार या नीति के विरुद्ध हो। इस तरह बादशाह एक वैध (कांस्टीचूशनल) शासक रह गया है। असल में शासन तो पार्लिमेंट अपने मंत्रिमंडल के ज़रिए करती है, लेकिन सब महत्वपूर्ण काम बादशाह के नाम से और उसके हस्ताक्षर करने पर होते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि बादशाह सिर्फ राज करता है, शासन नहीं। वह सब राजनैतिक दलों (पार्टियों) से परे है, वह किसी दल का सदस्य नहीं हो सकता। अँगरेजी शासन-विधान में राजा सम्मान की वस्तु है, भय की नहीं। इंगलैंड में बादशाह का पद लगभग नौ सौ वर्ष से बराबर चला आ रहा है, केवल चार्ल्स-पहले की फांसी से, कुछ समय के लिए, यह सिलसिला टूट गया था। वहाँ इस पद की मान-मर्यादा अब तक बनी हुई; हाँ, वहाँ वे

प्राचीन तथा आधुनिक बादशाहों के व्यावहारिक अधिकारों में जमीन-आसमान का अन्तर है। आजकल बादशाह पुरानी राजसत्ता की छाया-मात्र है।

शाही खर्च—बादशाह और उसके परिवार के निजी खर्च के लिए पार्लिमेंट प्रति वर्ष निर्धारित रकम स्वीकार करती है। सरकारी खर्च की इस मद को 'सिविल लिस्ट' कहते हैं। एक बादशाह के शासन-काल में यह रकम प्रति वर्ष बदलती नहीं। जब तक वह गद्दी पर रहता है, उसे ठहराई हुई रकम मिलती रहती है। उसके मरने पर, शाही खर्च की जाँच होती है, और नए बादशाह की आवश्यकताओं के अनुसार शाही खर्च की रकम निर्धारित की जाती है। इसका निश्चय करने से पूर्व पार्लिमेंट में पूरी बहस होती है। अन्य विषयों की तरह पार्लिमेंट का उस पर पूर्ण नियन्त्रण है। एक बादशाह के शासन-काल के समाप्त होने पर शाही खर्च का ब्योरा प्रकाशित किया जाता है। बादशाह के पास निजी जायदाद काफी होती है, पर सब जायदाद की आमदनी राष्ट्र को सौंप दी जाती है, और बादशाह को अपने परिवार के खर्च के लिए पार्लिमेंट की उदारता पर निर्भर रहना पड़ता है। आम तौर से बादशाह को प्रति वर्ष मिलनेवाली कुल रकम ४,१०,००० पौंड होती है, इसमें से १,१०,००० पौंड बादशाह की प्रिवी पर्स (निजी खर्च); १,३४,००० पौंड महल के कर्मचारियों का वेतन और पेन्शन; १,५२,८०० पौंड महल का खर्च, भोजन-वस्त्र आदि; और १३,२०० पौंड दान और पारितोषिक आदि के लिए होते हैं। बादशाह की सन्तान तथा भाइयों आदि के लिए अलग-अलग रकमें निर्धारित रहती हैं। सब शाही खर्च मिलाकर इंगलैंड की कुल वार्षिक आय के एक प्रतिशत के पन्द्रहवें हिस्से से अधिक नहीं होता।

प्रिवी कौंसिल—बादशाह को उसके शासन-कार्य में सलाह देने के लिए एक सभा होती है, जिसे 'प्रिवी कौंसिल' (गुप्त सभा) कहते हैं।

यह एक पुरानी सभा का धीरे-धीरे बदला हुआ स्वरूप है। नार्मन लोगों के आने तक इंगलैंड में 'विटन-सभा' (बुद्धिमानों की सभा) होती थी, जो बादशाह को आवश्यक विषयों पर सलाह दिया करती थी। नार्मन बादशाहों के समय में इसका स्वरूप कुछ बदल गया और यह अधिकतर जागीरदारों और बड़े-बड़े पादरियों की एक महासभा (ग्रेट कौंसिल) बन गयी। राज्य या दरबार के पदाधिकारियों में से जो व्यक्ति इस सभा के सदस्य होते थे, और अधिकतर बादशाह के पास रहा करते थे, उनकी धीरे-धीरे एक स्थायी कमेटी सी बन गयी। पीछे इस कमेटी के सदस्य भी इतने अधिक हो गए कि उन सब का बादशाह से घनिष्ठ सम्बन्ध न रह सका। अतः पन्दरहवीं सदी में बादशाह को सलाह देनेवाली इसकी एक छोटी कमेटी बनी; यह 'गुप्त सभा' कहलाने लगी।

इस सभा के अधिकार अब बहुत कम हो गये हैं। जब कभी बादशाह को ऐसी आज्ञा निकालनी होती है, जिसमें इस सभा की अनुमति की आवश्यकता हो, तब इस सभा का अधिवेशन किया जाता है। अधिवेशन की सूचना सभा के सब सदस्यों के पास नहीं भेजी जाती। अकसर छः ऐसे सदस्य बुला लिए जाते हैं जो मन्त्रिमंडल के सदस्य होते हैं। उनके उपस्थित होने पर सभा का कार्य हो जाता है। बादशाह इस सभा में उपस्थित नहीं होता। इस सभा के सभापति को 'लार्ड प्रेसिडेंट' कहते हैं। यह सदैव मंत्रिमंडल का सदस्य होता है।

'बादशाह की परिषद' कहने से इसी सभा का आशय लिया जाता है। इस सभा की सलाह से बादशाह को जो आज्ञाएँ निकलती हैं, उन्हें सपरिषद बादशाह की आज्ञाएँ (आर्डर्स–इन–कौंसिल) कहा जाता है।

प्रिवी कौंसिल के सदस्य—इस सभा के सब सदस्यों की संख्या प्रायः तीन सौ से ऊपर होती है। इसमें निम्नलिखित व्यक्ति होते हैं:—(१) मन्त्रिमण्डल के सब भूत-पूर्व तथा वर्तमान सदस्य (२) मुख्य राज्याधिकारी, (३) राज्यपरिवार के सदस्य, (४) कुछ 'विशप' और

'आर्कबिशप', (५) बहुत से लार्ड, जिनमें प्रायः वे सब व्यक्ति होते हैं, जिन्होंने स्वदेश में तथा विदेश में उच्च पदों पर कार्य किया हो, (६) कुछ मुख्य भूतपूर्व तथा वर्तमान न्यायाधीश, (७) उपनिवेशों और भारतवर्ष के कुछ राजनीतिज्ञ, और (८) इस सभा के सदस्य की उपाधि पाये हुए दूसरे सज्जन।

बादशाह को अधिकार है कि वह किसी आदमी को इस सभा का सदस्य बनाये। इस सभा के सदस्य प्रायः ऐसे व्यक्ति बनाये जाते हैं, जिन्होंने राजनीति, साहित्य, विज्ञान, शासन या युद्ध आदि क्षेत्रों में विशेष सेवा की हो।

इस सभा के सदस्य आजीवन होते हैं, और 'राइट आनरेबल' की उपाधि से सम्मानित होते हैं। सभा के सब सदस्य उस समय बुलाये जाते हैं, जब नये बादशाह का राज्याभिषेक होता है, और वह प्रचलित कानून के अनुसार शासन करने की प्रतिज्ञा करता है। 'कामन्स' सभा का अधिवेशन करने तथा स्थगित कराने के लिए, बादशाह के घोषणा-पत्र इसी सभा में तैयार होते हैं।

प्रिवी कौंसिल की उपसमितियाँ--इस सभा की कई-एक समितियाँ हैं। सब से प्रधान उपसमिति मंत्रिमण्डल है, जिसके द्वारा शासन का काम होता है। इसके बारे में खुलासा अगले परिच्छेद में लिखा जायगा। प्रिवी कौंसिल की दूसरी महत्वपूर्ण उपसमिति न्याय-समिति है। यह उपसमिति राष्ट्र-मण्डल के कुछ राज्यों की सब से ऊँची अदालतों की अपील सुनती है, और उन राज्यों की सबसे बड़ी अदालत है। इसके फैसलों की कहीं अपील नहीं होती। पहले इसमें भारतवर्ष के दीवानी के बहुत से तथा फौजदारी के भी कुछ मामलों की अपील की जाती थी। अब यहाँ के किसी मामले की अपील इसमें नहीं होती। प्रायः भारतवासी बोलचाल में इस उपसमिति को ही 'प्रिवी कौंसिल' कहते रहे हैं। इसके सब सदस्यों को वेतन मिलता है

पाँचवाँ परिच्छेद

मन्त्रिमण्डल

"कोई बादशाह मंत्रियों का विरोध नहीं करना चाहता; वह जानता है कि भूत काल में ऐसे विरोध के कारण एक बादशाह को अपना सिर देना पड़ा और दूसरे को अपना सिंहासन खोना पड़ा।"

ऐतिहासिक परिचय—पिछले परिच्छेद में बादशाह की प्रिवी कौंसिल का वर्णन किया गया है। उसके बहुत बड़ी होने के कारण, उसके सदस्यों में से कुछ की एक छोटी कमेटी बनी, जिसे मन्त्रिमण्डल कहते हैं, और जिस पर बादशाह का विशेष विश्वास होता है। शासन-पद्धति सम्बन्धी अन्य विषयों की तरह इङ्गलैंड की इस संस्था का भी धीरे-धीरे विकास हुआ।

चौदहवीं शताब्दी तक बादशाह अपने मन्त्रियों को स्वयं चुनता था। मन्त्री भी प्रायः बादशाह की इच्छानुसार काम करनेवाले होते थे, चाहे उनके ऐसा करने से राज्य का हित हो या न हो। परन्तु सतरहवीं शताब्दी के अन्त में लोगों की धारणा हुई कि यदि मन्त्रियों का कार्य 'कामन्स' सभा के अधिकतर सदस्यों के मत के प्रतिकूल हो तो उन पर अभियोग लगाया जाना चाहिए। इस विषय पर विचार होते-होते अन्त में यह सोचा गया कि ऐसे सज्जनों को मन्त्री बनाया जाया करे, जिनके मत से पार्लिमेंट के अधिकतर सदस्य सहमत हों। अब यही प्रथा जारी है। सन् १७१४ ई० में जार्ज-पहला गद्दी पर बैठा। वह तथा उसका पुत्र जो पीछे जार्ज-दूसरे के नाम से बादशाह बना, अँगरेज़ी भाषा न जानने के कारण मन्त्रिमण्डल या पार्लिमेंट में वादविवाद

में भाग न ले सकते थे। इसलिए इनके समय में राज्य का शासन-सूत्र बादशाह के हाथ से निकलकर प्रधान मन्त्री के हाथ में चला गया, और मन्त्रिमण्डल के अधिकार बहुत बढ़ गये। यद्यपि पीछे जार्ज-तीसरे ने मन्त्रियों का कुछ विरोध किया, पर वह सफल न हो सका, और उनकी शक्ति क्रमशः बढ़ती ही चली गयी।

मन्त्रिवर्ग का निर्म्माण—जब पार्लिमेंट का नया निर्वाचन होता है या जब प्रधान मंत्री अपने पद से इस्तीफा देता है, तो बादशाह 'कामन्स' सभा के ऐसे सदस्य को प्रधान मन्त्री बनाता है, जो उस सभा के अधिकतम सदस्यों को अपनी नीति के पक्ष में रख सके। प्रधान मन्त्री अन्य मन्त्रियों को चुनकर मन्त्रिवर्ग ('मिनिस्ट्री') बनाता है। ये अन्य मन्त्री 'कामन्स' (जनसाधारण) सभा अथवा 'लार्ड सभा के सदस्य होते हैं। मन्त्रिवर्ग में प्रायः प्रत्येक विभाग के दो-दो मन्त्री रहते हैं, एक कामन्स सभा का सदस्य होता है, और दूसरा लार्ड-सभा का। इससे यह सुभीता होता है कि दोनों सभाओं में ऐसे आदमी रहते हैं, जिनका भिन्न-भिन्न सरकारी विभागों से घनिष्ठ सम्बन्ध हो, और जो अपने-अपने विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले उन प्रश्नों का भली भांति उत्तर दे सकें, जो उन सभाओं के सदस्यों द्वारा समय-समय पर पूछे जायँ।

बहुधा मन्त्री उसी दल के होते हैं, जिस दल का सदस्य प्रधान मन्त्री हो, परन्तु विशेष दशा में दो या अधिक दलों के सदस्य भी मंत्रि-वर्ग में ले लिए जाते हैं। ऐसे वर्ग को सम्मिलित मंत्रिवर्ग ('कोअलिशन-मिनिस्ट्री') कहते हैं। प्रधान मन्त्री द्वारा चुने हुए मन्त्रियों को बादशाह मन्त्री नियत कर देता है। चुनाव का यह कार्य बड़े महत्व का होता है, और, सरकार की स्थिरता इस चुनाव पर ही निर्भर होती है। ब्रिटिश मंत्रिवर्ग में लगभग ५० मन्त्री होते हैं। प्रत्येक मन्त्री को कोई एक राजनैतिक विभाग सौंप दिया जाता है, और वह उसका उत्तरदायी होता है।

मंत्रिमंडल — मंत्रिमंडल ('केबिनेट') में मन्त्रिवर्ग के मुख्य-मुख्य मन्त्री रहते हैं। इसके सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। इसका संगठन किसी निर्धारित नियम के अनुसार नहीं होता। साधारण तौर से लगभग बीस मन्त्री होते हैं। मन्त्रिमंडल, ब्रिटिश शासन सम्बन्धी सब कार्य के लिए 'कामन्स' सभा के प्रति उत्तरदाता है। प्रधान मन्त्री सरकार की नीति ठहराता है और विविध राजनैतिक विभागों का निरीक्षण करता है।

मंत्रिमंडल और पार्लिमेंट का सम्बन्ध——प्रत्येक मन्त्री अपने-अपने विभाग के लिए, और सम्पूर्ण मंत्रिवर्ग शासन नीति के लिए, पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि मंत्रिमंडल किसी महत्वपूर्ण प्रस्ताव पर 'कामन्स' सभा में हार जाय तो प्रधान मन्त्री अपने पद से इस्तीफा दे देता है, और मंत्रिमंडल भङ्ग हो जाता है। स्मरण रहे कि शासनपद्धति का कोई ऐसा नियम नहीं है कि इस परिस्थिति में प्रधान मन्त्री और मंत्रिमंडल को इस्तीफा देना ही पड़े, परन्तु प्रचलित प्रथा के अनुसार वे इस्तीफा दे देते हैं। यदि वे इस्तीफा न दें, तो वार्षिक खर्च की मांगों की स्वीकृति के समय, कामन्स सभा उनका वेतन तथा उनके विभाग की माँग स्वीकार न करे, और उनका शासन-कार्य चलना असम्भव हो जाय। परन्तु ऐसा होने का अवसर नहीं आता, मंत्रिमंडल पहले ही इस्तीफा दे देता है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि पार्लिमेंट का मन्त्रियों पर पूर्ण प्रभुत्व है। जब कभी कोई मंत्रिमंडल अपना कार्यक्रम स्वीकार न करा सकने के कारण, भङ्ग होगा तो पार्लिमेंट को नया प्रधान मन्त्री चुनने का भार ग्रहण करना होगा। यदि इस नए प्रधान मन्त्री के बनाए हुए नए मंत्रिमंडल का भी कार्यक्रम स्वीकृत न किया गया तो कोई व्यक्ति सहसा प्रधान मन्त्री के पद को ग्रहण करना स्वीकार न करेगा, और शासन-यन्त्र चलने में बाधा उपस्थित होने की शंका होगी। इसलिए साधारण तौर पर मन्त्री जो प्रस्ताव उपस्थित करते हैं, वे पार्लिमेंट में स्वीकृत हो जाते हैं। इसके

विपरीत, यदि पार्लिमेंट का कोई सदस्य अपना प्रस्ताव उपस्थित करना चाहे और मंत्रिमंडल उसके विरुद्ध हो, तो उसके स्वीकृत होने की सम्भावना बहुत कम होती है।

उसकी कार्यपद्धति—मन्त्रिमण्डल की बैठक में प्रधान मन्त्री सभापति होता है। इस सभा में शासन-नीति सम्बन्धी विचार होता है तथा यह निश्चय होता है कि सरकार की ओर से कौन-कौन से कानूनी मसविदे या प्रस्ताव पार्लिमेंट में उपस्थित किए जायँ। प्रत्येक मन्त्री अपने-अपने विभाग का उत्तरदाता होता है, और, उससे सम्बन्ध रखनेवाली साधारण बातों का निर्णय, जिनका अन्य विभागों से भी सम्बन्ध हो, मन्त्रिमण्डल की बैठक में होता है। मन्त्रिमण्डल में हरेक बात का निर्णय उपस्थित सदस्यों के बहुमत के अनुसार नहीं होता। प्रधान मन्त्री तथा कुछ खास-खास मन्त्रियों के मत को अधिक महत्व दिया जाता है, और प्रायः सब बातों का निर्णय उन्हीं के मतानुसार होता है। यदि कोई मन्त्री इनके निर्णय से असन्तुष्ट हो तो वह अपने पद से इस्तीफा देने में स्वतन्त्र है, परन्तु जब तक वह ऐसा न करे, उसका कर्तव्य है कि वह पार्लिमेंट में प्रधान मन्त्री का साथ दे और उसका समर्थन करे।

मन्त्रिमण्डल की सब कार्रवाई गुप्त रखी जाती है। यदि किसी विषय के सम्बन्ध में मन्त्रिमण्डल के सदस्यों में मतभेद हो तो वह भी गुप्त रखा जाता है। पार्लिमेंट में तो सब मन्त्री, प्रधान मंत्री के मत के अनुसार ही काम करते हैं। हाँ, यदि कोई मंत्री मतभेद के कारण इस्तीफा दे तो उसे अधिकार रहता है कि वह इस्तीफा देने के कारणों को पार्लिमेंट में प्रगट कर दे। यदि कोई मंत्री ऐसा काम करे, जो मन्त्रिमण्डल की एकता के विरुद्ध हो तो प्रधान मन्त्री को अधिकार है कि उस मंत्री को इस्तीफा देने के लिए बाध्य करे। मन्त्रिमण्डल के निर्णयों का कोई लिखित विवरण नहीं रखा जाता। महत्वपूर्ण निर्णयों की सूचना, प्रधान मंत्री बादशाह को दे देता है।

मंत्रिमण्डल और बादशाह का सम्बन्ध—जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, बादशाह शासन सम्बन्धी सब कार्य, मंत्रिमण्डल के मन्तव्यों तथा प्रधान मंत्री के परामर्श के अनुसार करता है। यदि वह चाहे तो वह ऐसा करने से इनकार भी कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में प्रधान मन्त्री अपने पद से इस्तीफा दे देता है और, इसके फल-स्वरूप सभी मंत्रियों को इस्तीफा देना होता है; बादशाह को नए प्रधान मन्त्री का चुनाव करना होता है। नया प्रधान मन्त्री नए मन्त्रि-मण्डल का चुनाव करता है। यदि नए प्रधान मन्त्री का मत पुराने प्रधान मन्त्री के अनुसार ही रहे तो बादशाह को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसकी बात मान लेनी पड़ती है, या पार्लिमेंट को भङ्ग करना होता है। बादशाह पार्लिमेंट को ऐसी दशा में ही भङ्ग करता है, जब उसे इस बात का विश्वास हो कि जनता नए चुनाव में बादशाह के निर्णय का समर्थन करेगी।

पार्लिमेंट के नए चुनाव के बाद नया प्रधान मन्त्री चुना जाता है, और वह अपना नया मन्त्रिमण्डल बनाता है। यदि यह प्रधान मन्त्री भी पुराने प्रधान मन्त्री की नीति का समर्थन करे तो बादशाह को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसकी बात माननी पड़ती है; नहीं तो जनता के प्रति-निधियों से उसका विरोध होने की सम्भावना होती है। प्रायः कोई बादशाह यह विरोध होने देना नहीं चाहता, क्योंकि वह जानता है कि भूत काल में ऐसे विरोध के कारण एक बादशाह (चार्ल्स पहले) को अपना सिर देना पड़ा और दूसरे बादशाह (जेम्स दूसरे) को अपना सिंहासन खोना पड़ा था। इसीलिए बादशाह आम तौर से अपनी इच्छा के अनुसार शासन-कार्य नहीं करता, वरन् प्रधान मन्त्री और मन्त्रिमण्डल के मन्तव्यों के अनुसार ही सब कार्य करता है।

इस विचार से कुछ लोग इंगलैंड के बादशाह को मन्त्रिमण्डल के हाथ की कठपुतली कहते हैं, परन्तु असल में जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बादशाह के व्यक्तित्व का प्रभाव शासन सम्बन्धी कार्यों में थोड़ा-

बहुत अवश्य रहता है।

मन्त्रिमंडल के सदस्य—मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं है। आम तौर से प्रधान मन्त्री की इच्छा से उसमें घटबढ़ होती रहती है। प्रधान मन्त्री को दस हजार पौंड वार्षिक वेतन मिलता है। अपने पद का काम छोड़ने पर उसे हर वर्ष दो हजार पौंड पेन्शन दी जाती है। दूसरे मन्त्रियों को हर वर्ष दो हजार से पांच हजार पौंड तक वार्षिक वेतन मिलता है।

मन्त्रिमण्डल के नीचे लिखे पदाधिकारी हैं, और उनका कार्य इस प्रकार है :—

१—प्रधानमंत्री और प्रधान कोषाध्यक्ष। प्रधान मंत्री के कार्य पहले बताए जा चुके हैं। वह प्रधान कोषाध्यक्ष भी बन जाता है। वह 'कामन्स' सभा का नेता भी माना जाता है।

२—लार्ड प्रेसीडैंट-आफ-दि कौंसिल। यह प्रिवी कौंसिल का सभापति होता है। इसे विशेष कार्य करना नहीं होता; यह विचार किया करता है।

३—लार्ड चान्सलर। यह लार्ड सभा का, तथा ब्रिटिश संयुक्त राज्य के न्याय-विभाग का, प्रधान होता है और न्यायाधीशों को नियत करता है। इसके अलावा, यह सरकार का मुख्य कानूनी सलाहकार होता है। राजकीय मोहर इसी के पास रहती है। यह पद रोमन कैथलिक ईसाई को नहीं मिलता।

४—लार्ड प्रिवी सील। सन् १८८४ ई० से पहले यह पदाधिकारी बादशाह के हस्ताक्षर किए हुए महत्वपूर्ण आज्ञाओं पर मोहर लगाता था, और इसलिए उन आज्ञापत्रों का उत्तरदायी समझा जाता था। परन्तु उस वर्ष से इस मोहर की आवश्यकता न रही और यह कार्य भी न रहा। अब यह पद मंत्रिमंडल के किसी ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति को दिया जाता है जो अपना सब समय राष्ट्र की शासन

सम्बन्धी बातों पर विचार करने में लगादे। प्रायः इस पद वाला मन्त्री लार्ड-सभा का नेता भी होता है। मन्त्रिमण्डल में इसके विचारों का बड़ा महत्व है।

५—अर्थ-मन्त्री या चान्सलर-आफ-एक्सचेकर, अर्थ विभाग का सब कार्य इसके अधीन होता है। यही बजट तैयार करता है, और पार्लिमेंट में पेश करता है।

६—स्वदेश-मन्त्री या होम सेक्रेटरी। इसका कार्य है, प्रबंध करना और शांति रखना। पुलिस, जेल, सुधार-गृह (रिफार्मेटरी) आदि इसके अधीन होते हैं। यह खान, कारखाने आदि विविध औद्योगिक संस्थाओं के इनस्पेक्टरों को नियत करता और उनके कार्य को देखता है। यह इस बात का भी प्रबन्ध करता है कि विदेशियों को किन-किन नियमों का पालन करने से नागरिक के अधिकार दिए जायँ, तथा किन विदेशियों को इंगलैंड में रहने ही न दिया जाय।

७—विदेश-मन्त्री। यह इस बात का निश्चय करता है कि इंगलैण्ड की अन्य राज्यों से क्या नीति रहनी चाहिए। किसी राज्य से युद्ध की घोषणा करना या शान्ति का व्यवहार करना, अथवा सन्धि करना उसका कार्य है। वास्तव में इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषयों का निश्चय तो मंत्रिमण्डल में ही होता है, विदेश-मंत्री उस निश्चय को अमल में लाता है। इंगलैंड का अन्य देशों से जो राजनैतिक पत्र-व्यवहार होता है, उसका भी उत्तरदाता विदेश-मन्त्री ही होता है।

८—उपनिवेश-मन्त्री। यह साम्राज्य के स्वाधीन भागों के शासन में कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सकता, लेकिन दूसरे उपनिवेशों के अच्छे शासन और उन्नति के लिए ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी होता है।

९—लेंकेस्टर की डची का चान्सलर। यह बादशाह की निजी रियासत का प्रबन्ध करता है। इस पद का कार्य अधिक नहीं

रहता, इसलिए यह मन्त्री अपना समय शासन सम्बन्धी बातों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने में लगाता है।

निम्नलिखित पदाधिकारियों का कार्य उनके नाम से स्पष्ट है :—

१०—स्काटलैंड का मन्त्री। ११—व्यापारिक बोर्ड का सभापति। १२—युद्ध-मंत्री। १३—नौसेना विभाग का प्रधान। १४—वायु-सेना मन्त्री। १५—वायुयान-निर्माण-मंत्री। १६—स्वाधीन-उपनिवेश-मंत्री। १७—यातायात मंत्री। १८—सूचना-मंत्री। १९—खाद्यपदार्थ-मंत्री। २० रसद-मंत्री। २१—विभाग-हीन-मंत्री। २२—पोस्टमास्टर जनरल। २३—शिक्षा-मंत्री। २४—स्वास्थ्य-मंत्री। २५—कृषि-मंत्री। २६—मजदूर-विभाग-मंत्री। २७—निर्माण-विभाग-मंत्री।

युद्ध-काल में युद्ध-कार्य का संचालन करने के लिए युद्ध-मंत्रिमण्डल बनाया जाता है। इसमें मन्त्रिमण्डल के आठ-दस प्रमुख सदस्य होते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्य मंत्रिवर्ग से ही लिए जाते हैं। उनके अतिरिक्त मन्त्रिवर्ग में ऐसे पदाधिकारी भी रहते हैं, जो मन्त्रिमण्डल के सदस्य नहीं होते। ऐसे पदाधिकारी प्रायः निम्नलिखित होते हैं:—पेंशन विभाग का मंत्री; अटार्नी-जनरल; सालिसिटर-जनरल; स्काटलैंड का सालिसिटर-जनरल; युद्ध-राजस्व मन्त्री; लार्ड एडवोकेट; स्काटलैंड का उपमन्त्री और विविध विभागों के उपमन्त्री। ये उसी समय विचार-विनिमय के लिए बुलाए जाते हैं, जब इनके विभाग को प्रभावित करनेवाले विषयों पर विचार होता है।

मंत्रियों की समितियाँ—कई विभिन्न समितियों में विचार आदि के बाद ही नीति निर्धारित की जाती है। मुख्य समितियाँ रक्षा और आर्थिक नीति की हैं, जिनका अध्यक्ष प्रधान मंत्री होता है। ऐसे विषय जो बहुत विवादग्रस्त हों, छोटी से बड़ी, और उससे अधिक बड़ी समितियों तक ले जाए जा सकते हैं।

मन्त्री और सरकारी कर्मचारी—शासन-कार्य के प्रत्येक

विभाग में एक मंत्री के अधीन कई-एक स्थायी कर्मचारी रहते हैं। मंत्री अपने विभाग सम्बन्धी नीति निर्धारित करता है, उस नीति के अनुसार शासन-कार्य करना स्थायी सरकारी कर्मचारियों का काम है। कर्मचारी अपने पद पर बराबर बने रहने के कारण अपने विभाग की सब आवश्यक बातों तथा बहुत-सी बारीकियों को जानते हैं। मंत्रिमण्डल समय-समय पर बदलते रहते हैं। नये-नये मन्त्री नियुक्त होते हैं; उन्हें अपने विभाग के सम्बन्ध में उतना ज्ञान नहीं हो सकता। वे अपने काम के लिए उक्त कर्मचारियों का ही आसरा लेते हैं। इन कर्मचारियों की ही बदौलत शासन-कार्य का सिलसिला बना रहता है।

यदि कोई मन्त्री अपने विभाग की ब्योरेवार बातों में हस्तक्षेप करने लगे तो सरकारी कर्मचारी उसे हरेक विषय में इतनी अधिक बातें बतला सकते हैं कि मंत्री फाइलों के बोझ से दब जाय, उसे पार्लिमेंट के आवश्यक कार्यों के लिए अवकाश ही न रहे और अन्त में लाचार होकर, उसे सरकारी कर्मचारियों की शरण लेना पड़े।

यदि सरकारी कर्मचारियों का कार्य सन्तोषजनक न हो तो मन्त्री उन पर जुर्माना कर सकता है, वह उन्हें बरखास्त भी कर सकता है। यदि सरकारी कर्मचारी द्वारा कोई त्रुटि हो जाय तो उसके लिए मन्त्री उत्तरदायी समझा जाता है। उसके अच्छे कार्य का श्रेय भी मंत्री को ही मिलता है; सरकारी कर्मचारी को उसका पुरस्कार वेतन-वृद्धि या पदवी के रूप में प्राप्त होता है। कोई सरकारी कर्मचारी 'कामन्स'-सभा का सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार नहीं हो सकता।

सिविल सर्विस—भिन्न-भिन्न सरकारी विभागों के लिए जिन स्थायी सरकारी कर्मचारियों का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे अधिकतर सिविल सर्विस की प्रतियोगी परीक्षा पास होते हैं; जिस वर्ष जितने कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, उस वर्ष उतने आदमी उन व्यक्तियों में से लेलिए जाते हैं, जिन्होंने यह परीक्षा दी हो, और क्रमानुसार अधिक-से-अधिक नम्बर पाये हों। कुछ ऊँचे पदों पर उनसे

नीचे पद वालों को तरक्की देकर नियुक्ति की जाती है।

इन स्थायी कर्मचारियों के पदों का वेतन निश्चित रहता है और वह क्रमशः बढ़ता जाता है। ये उस समय तक अपने पद से जुदा नहीं किए जाते, जब तक वे नेकचलनी से अपना कार्य करते रहें। जब वे नौकरी से अवकाश ग्रहण करते हैं, तो इन्हें पेन्शन मिलता है।

छठा परिच्छेद

पार्लिमेंट का संगठन

"ब्रिटिश पार्लिमेंट सब पार्लिमेंटों की माता है।"

प्राक्कथन—ब्रिटिश संयुक्त-राज्य की सबसे बड़ी कानून बनानेवाली संस्था पार्लिमेंट है। अन्य देशों की आधुनिक व्यवस्थापक संस्थाओं से यह बहुत पुरानी है, और कई देशों ने इसके ही नमूने पर अपनी-अपनी व्यवस्थापक सभाओं की रचना की है। इसलिए इसे 'पार्लिमेंटों की माता' कहा जाता है। यद्यपि साधारण बोलचाल में पार्लिमेंट से उसकी एक ही सभा (कामन्स-सभा) का अभिप्राय होता है, असल में उसकी दो सभाएँ हैं, १—'कामन्स' (जनसाधारण) सभा या 'हाउस-आफ-कामन्स' और, 'लार्ड' सभा या 'हाउस-आफ़-लार्डस'। इसके आधुनिक सङ्गठन आदि के सम्बन्ध में आगे विचार करेंगे। पहले यह जान लेना चाहिए कि पर्लिमेंट की स्थापना किस प्रकार हुई।

पार्लिमेंट की प्रारम्भिक स्थिति—एंग्लो-सेक्सन-काल में अर्थात् दसवीं सदी तक, इंगलैण्ड में बादशाह ही सब नियमों को बनाता या बनवाता था। हाँ, वह मुख्य-मुख्य नियमों में, तथा असाधारण करों के निर्धारित करने में, 'विटन सभा' की सलाह ले लिया करता था, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। ग्यारहवीं सदी में राज्याधिकार नार्मन बादशाहों के हाथ में चला गया। इन्होंने इंगलैंड

विभाग में एक मंत्री के अधीन कई-एक स्थायी कर्मचारी रहते हैं। मंत्री अपने विभाग सम्बन्धी नीति निर्धारित करता है, उस नीति के अनुसार शासन-कार्य करना स्थायी सरकारी कर्मचारियों का काम है। कर्मचारी अपने पद पर बराबर बने रहने के कारण अपने विभाग की सब आवश्यक बातों तथा बहुत-सी बारीकियों को जानते हैं। मंत्रिमण्डल समय-समय पर बदलते रहते हैं। नये-नये मन्त्री नियुक्त होते हैं; उन्हें अपने विभाग के सम्बन्ध में उतना ज्ञान नहीं हो सकता। वे अपने काम के लिए उक्त कर्मचारियों का ही आसरा लेते हैं। इन कर्मचारियों की ही बदौलत शासन-कार्य का सिलसिला बना रहता है।

यदि कोई मन्त्री अपने विभाग की ब्योरेवार बातों में हस्तक्षेप करने लगे तो सरकारी कर्मचारी उसे हरेक विषय में इतनी अधिक बातें बतला सकते हैं कि मंत्री फाइलों के बोझ से दब जाय, उसे पार्लिमेंट के आवश्यक कार्यों के लिए अवकाश ही न रहे और अन्त में लाचार होकर, उसे सरकारी कर्मचारियों की शरण लेना पड़े।

यदि सरकारी कर्मचारियों का कार्य सन्तोषजनक न हो तो मन्त्री उन पर जुर्माना कर सकता है, वह उन्हें बरखास्त भी कर सकता है। यदि सरकारी कर्मचारी द्वारा कोई त्रुटि हो जाय तो उसके लिए मन्त्री उत्तरदायी समझा जाता है। उसके अच्छे कार्य का श्रेय भी मंत्री को ही मिलता है; सरकारी कर्मचारी को उसका पुरस्कार वेतन-वृद्धि या पदवी के रूप में प्राप्त होता है। कोई सरकारी कर्मचारी 'कामन्स'-सभा का सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार नहीं हो सकता।

सिविल सर्विस—भिन्न-भिन्न सरकारी विभागों के लिए जिन स्थायी सरकारी कर्मचारियों का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे अधिकतर सिविल सर्विस की प्रतियोगी परीक्षा पास होते हैं; जिस वर्ष जितने कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, उस वर्ष उतने आदमी उन व्यक्तियों में से लेलिए जाते हैं, जिन्होंने यह परीक्षा दी हो, और क्रमानुसार अधिक-से-अधिक नम्बर पाये हों। कुछ ऊँचे पदों पर उनसे

नीचे पद वालों को तरक्की देकर नियुक्ति की जाती है।

इन स्थायी कर्मचारियों के पदों का वेतन निश्चित रहता है और वह क्रमशः बढ़ता जाता है। ये उस समय तक अपने पद से जुदा नहीं किए जाते, जब तक वे नेकचलनी से अपना कार्य करते रहें। जब ये नौकरी से अवकाश ग्रहण करते हैं, तो इन्हें पेन्शन मिलती है।

———o———

छठा परिच्छेद

पार्लिमेंट का संगठन

"ब्रिटिश पार्लिमेंट सब पार्लिमेंटों की माता है।"

प्राक्कथन—ब्रिटिश संयुक्तराज्य की सबसे बड़ी कानून बनानेवाली संस्था पार्लिमेंट है। अन्य देशों की आधुनिक व्यवस्थापक संस्थाओं में यह बहुत पुरानी है, और कई देशों ने इसके ही नमूने पर अपनी-अपनी व्यवस्थापक सभाओं की रचना की है। इसलिए इसे 'पार्लिमेंटों की माता' कहा जाता है। यद्यपि साधारण बोलचाल में पार्लिमेंट से उसकी एक ही सभा (कामन्स-सभा) का अभिप्राय होता है, असल में उसकी दो सभाएँ हैं, १—'कामन्स' (जनसाधारण) सभा या 'हाउस-आफ-कामन्स' और, 'लार्ड' सभा या 'हाउस-आफ़-लार्डस'। इसके आधुनिक सङ्गठन आदि के सम्बन्ध में आगे विचार करेंगे। पहले यह जान लेना चाहिए कि पर्लिमेंट की स्थापना किस प्रकार हुई।

पार्लिमेंट की प्रारम्भिक स्थिति—एँग्लो-सेक्सन-काल में अर्थात् दसवीं सदी तक, इंगलैण्ड में बादशाह ही सब नियमों को बनाता या बनवाता था। हाँ, वह मुख्य-मुख्य नियमों में, तथा असाधारण करों के निर्धारित करने में, 'विटन सभा' की सलाह ले लिया करता था, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। ग्यारहवीं सदी में राज्याधिकार नार्मन बादशाहों के हाथ में चला गया। इन्होंने इंगलैंड

की भूमि, अपनी इच्छानुसार अपने साथियों या सैनिक सेवा करनेवालों में विभक्त कर दी। इनके समय में 'विटन सभा' का स्थान 'ग्रेट कौंसिल' ने ले लिया। इस सभा के सदस्य जागीरदार, सरदार, प्रधान लाट पादरी और लाट पादरी आदि बड़े-बड़े आदमी होते थे। बारहवीं सदी में कुछ बड़े-बड़े लोगों में यह भाव फैला कि कर निर्धारित करने का अधिकार उन्हें ही होना चाहिए, बादशाह को नहीं। पीछे, उन्होंने आवश्यक समझ लेने पर, जनसाधारण को भी अपने साथ मिला लिया, और सम्मिलित शक्ति से बादशाह का विरोध करने लगे। अन्त में सन् १२१५ ई० में प्रजा ने जान बादशाह पर विजय पायी और, उससे बलपूर्वक 'मेगनाचार्टा' नाम का महान अधिकार पत्र पा लिया।

दो सभाएँ—इस अधिकार-पत्र के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि छोटे जमींदारों आदि को स्थानीय शासकों अर्थात् 'शेरिफों' के पास भेजे हुए साधारण आज्ञापत्रों द्वारा बुलाया जाय, और बड़े-बड़े ज़मींदार अलग-अलग आमंत्रण-पत्रों ('समन') द्वारा बुलाये जायँ। धीरे-धीरे छोटे जमींदारों का अपने क्षेत्र के निवासियों में से निर्वाचन होने लगा और सभा में इनके बैठने का अलग प्रबन्ध हो गया। इस प्रकार महासभा को, जो इस समय पार्लिमेंट कही जाने लगी थी, दो सभाएँ हो गयीं, एक का नाम पड़ा 'कामन्स' (जनसाधारण) सभा, और दूसरी का नाम हुआ 'लार्ड' सभा।

कामन्स सभा

कामन्स सभा के सदस्य—सन् १८८५ में 'कामन्स' सभा के सदस्यों की संख्या ५७० निर्धारित की गई थी। सन् १९१८ के कानून से ग्रेटब्रिटेन में प्रतिनिधित्व का आधार सत्तर हजार व्यक्तियों के लिए एक प्रतिनिधि किया गया। पीछे आयर्लैंड में तेतालीस हजार व्यक्तियों के लिए एक प्रतिनिधि रखना निश्चित हुआ। इस प्रकार 'कामन्स' सभा के सदस्यों की संख्या ७०७ हुई।

सन् १९२२ में आयरिश फ्री स्टेट (दक्षिण आयर्लैंड) के लिए अलग पार्लिमेंट बन गया। अब 'कामन्स' सभा में ६४० सदस्य होते हैं, जिनमें १३ सदस्य उत्तरी आयर्लैंड के सम्मिलित हैं। सन् १९११ से निर्वाचन प्रति पांचवें वर्ष होता है। यह समय पार्लिमेंट की आज्ञा से बढ़ाया जा सकता है। मिसाल के तौर पर सन् १९३५ के बाद १९४० में चुनाव होना था, लेकिन महायुद्ध के कारण वह साल-दर-साल टलता रहा; आखिर जुलाई १९४५ में हुआ। इस प्रकार १९३५ में चुनी हुई कामन्स सभा दस वर्ष तक बनी रही। प्रधान मंत्री की सिफारिश से, बादशाह नया चुनाव पांच वर्ष से पहले भी करा सकता है।

प्रत्येक सदस्य को भाषण-स्वतन्त्रता है, अर्थात उस पर सभा में दिए हुए भाषण के लिए राजद्रोह या मानहानि का अभियोग नहीं चल सकता। वह दीवानी मामले में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। सन् १९१७ ई० से प्रत्येक सदस्य को ६०० पौंड प्रति वर्ष मिलते हैं।

निर्वाचन होने के लिए अयोग्यताएँ—निम्नलिखित व्यक्ति कामन्स सभा के सदस्यों के लिए निर्वाचक नहीं हो सकते :—

१—नाबालिग, लार्ड, विदेशी, दिवालिया और पागल।

[विदेशी व्यक्ति कुछ शर्तों के पालन करने पर ब्रिटिश प्रजा बन सकते हैं; उन शर्तों में मुख्य ब्रिटिश संयुक्त राज्य में पांच वर्ष निवास करना है।]

२—किसी घोर अपराध या राजद्रोह के अपराधी, जब तक वे अपने अपराध का दण्ड न भुगत लें, या उसके लिए क्षमा प्राप्त न करलें।

३—जो निर्वाचन के समय किसी निर्वाचन सम्बन्धी अपराध के अपराधी हों।

[ये व्यक्ति अपराधी ठहराए जाने के समय से सात वर्ष तक निर्वाचन के अधिकारी नहीं होते]

निर्वाचक कौन हो सकता है ?—ब्रिटिश संयुक्त राज्य में

निर्वाचक-संघ तीन तरह के हैं—(१) साधारण, (२) व्यावसायिक और (३) विश्वविद्यालय के। कोई व्यक्ति दो से अधिक निर्वाचक-संघों में मत नहीं दे सकता, और इन दो में से एक, साधारण निर्वाचक-संघ होना आवश्यक है। निर्वाचक-सूची प्रति वर्ष तैयार की जाती है।

साधारण निर्वाचक-संघ के मतदाताओं की सूची में वही व्यक्ति नाम लिखा सकता है, जिसमें निर्वाचक होने की अयोग्यता न हो, और जो उस वर्ष अपने निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा में, तीन महीने रहा हो। व्यावसायिक निर्वाचक-संघ में वही व्यक्ति मतदाता हो सकता है, जिसकी दस पौंड वार्षिक किराए वाली दुकान हो। ऐसे व्यक्ति की स्त्री या पति भी मताधिकारी होता है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही मताधिकार है। किसी विश्वविद्यालय के निर्वाचक-संघ में वही व्यक्ति मतदाता हो सकते हैं, जो उस विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हों, और जिनकी आयु इक्कीस वर्ष या इससे अधिक हो।

निर्वाचन-अपराध और उसका नियन्त्रण—सन् १८८३ के कानून के अनुसार निम्नलिखित उपायों से, निर्वाचन सम्बन्धी अनुचित व्यवहार रोका जाता है :—

१—रिश्वत देना, दावत देना, अनुचित प्रभाव डालना और झूठे नाम से काम करना, अपराध माना गया है।

२—निर्वाचन-कार्य के लिए होनेवाले खर्च की सीमा निर्धारित कर दी गई है।

[आम तौर से, प्रति निर्वाचक देहाती क्षेत्र में दो पेंस, और शहरी क्षेत्र में एक पेंस से अधिक खर्च न होना चाहिए।]

३—प्रत्येक उम्मेदवार को अपने निर्वाचन-व्यय का पूरा हिसाब, सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारी को देना होता है।

४—जो व्यक्ति किसी निर्वाचन-अपराध के अपराधी माने जाते हैं, उन्हें दण्ड दिया जाता है।

इस कानून के होने पर भी इंगलैंड में निर्वाचन-अपराधों की संख्या

काफी अधिक रहती है।

उम्मेदवारी के नियम—निम्नलिखित व्यक्ति कामन्स-सभा के उम्मेदवार नहीं हो सकते:—

१—जो व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते।

२—पादरी, चाहे वह रोमन केथलिक हों, या प्रोटेस्टेन्ट।

३—स्थायी सरकारी कर्मचारी, जज, पेन्शन पानेवाले व्यक्ति; और सरकारी कामों के ठेकेदार, 'शेरिफ' (स्थानीय अधिकारी) और निर्वाचन-स्थान के निर्वाचन-अफसर।

उम्मेदवार को अपना नाम दर्ज कराने के लिए नामज़दगी का पत्र भर कर निर्वाचन-अफसर को देना होता है। इस पद पर कम-से-कम दस ऐसे आदमियों के हस्ताक्षर होने चाहिएँ, जो उस उम्मेदवार का समर्थन करते हों। इसके अलावा उम्मेदवार को १५२ पौंड ज़मानत के रूप में जमा करने होते हैं। अगर उसे अपने निर्वाचक-संघ के तमाम मतों में से आठवें हिस्से से कम मत मिले तो यह जमानत ज़ब्त हो जाती है। आठवें हिस्से से अधिक मत मिलने की हालत में उम्मेदवार को ज़मानत की रकम वापिस मिल जाती है, चाहे वह उम्मेदवार चुनाव में हार ही जावे।

सदस्यों और निर्वाचकों का सम्बन्ध—कामन्स-सभा का प्रत्येक सदस्य अपने निर्वाचक-संघ का प्रतिनिधि होता है। उसका कर्तव्य है कि सभा में अपने निर्वाचन-क्षेत्र के शासन के सम्बन्ध में आवश्यक प्रश्न करता रहे। उसे चाहिए कि पार्लिमेंट का अधिवेशन समाप्त होने पर वह अपने निर्वाचन-क्षेत्र में जाकर निर्वाचकों को यह समझाए कि पार्लिमेंट में क्या हो रहा है, और उसमें उसने क्या भाग लिया है। उसका यह भी कर्तव्य है कि उन विविध प्रश्नों के सम्बन्ध में जो पार्लिमेंट में पेश होते हैं, या पेश होनेवाले हों, वह अपने निर्वाचकों की राय जानने का यत्न करे। परन्तु उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उसी राय के अनुसार कामन्स-सभा में अपना मत देता रहे। हाँ, उसे

इस बात का अवश्य ध्यान रखना होता है कि वह कामन्स-सभा में जो कार्य करे, वह उसकी निर्वाचन के समय की प्रतिज्ञा के विरुद्ध न हो। परन्तु यदि वह ऐसा काम करे, तो उसे कोई रोक नहीं सकता। शासन-पद्धति सम्बन्धी कोई नियम ऐसा नहीं है, जो उसे उक्त प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य करे। कभी-कभी तो सदस्य अपना पुराना दल या पार्टी छोड़ कर दूसरे नए दल में आ मिलते हैं। परन्तु जो विवेकशील होते हैं, ये अपने विचार-परिवर्तन के सम्बन्ध में अपने निर्वाचकों की राय जानना आवश्यक समझते हैं। इसलिए वे नाममात्र के काम वाली कोई सरकारी नौकरी स्वीकार करके कामन्स-सभा में पहले अपना स्थान खाली कर देते हैं और फिर सरकारी नौकरी छोड़ देते हैं। पीछे जब उनके निर्वाचक-संघ से फिर निर्वाचन होता है, तो वे नए दल के सदस्य बनकर, कामन्स-सभा के लिए उम्मेदवार बन जाते हैं।

[निर्वाचित हो चुकने पर कोई व्यक्ति अपने प्रतिनिधि-पद से इस्तीफा नहीं दे सकता; यदि वह कामन्स-सभा से पृथक् होना चाहे तो उसके लिए कोई सरकारी नौकरी स्वीकार कर लेना आवश्यक है।]

'कामन्स'-सभा के पदाधिकारी—'कामन्स' सभा के मुख्य पदाधिकारी निम्नलिखित होते हैं:—(१) 'स्पीकर' अर्थात् अध्यक्ष। (२) कमेटियों का सभापति तथा 'कामन्स'-सभा का उपसभापति, (३) क्लर्क। कामन्स-सभा का नया चुनाव हो जाने पर, प्रथम अधिवेशन में, सबसे पहले स्पीकर (अध्यक्ष) का चुनाव होता है। बादशाह इस चुनाव को स्वीकार कर लेता है। 'स्पीकर' सभा का नेता नहीं होता, उसका काम केवल सभा को सुचारू रूप से चलाना है। वह किसी प्रस्ताव पर केवल उस समय अपना मत देता है, जब उस प्रस्ताव पर दोनों पक्ष के मत बराबर हों। वह निश्चय करता है कि किसी प्रस्ताव पर बहस बन्द करने का प्रस्ताव किया जाय या नहीं। वह ऐसे सदस्य का

भाषण बन्द कर सकता है, जो पुनरुक्ति करता है यानी अपनी एक बार कही हुई बात को दुबारा कहता है, या बेमतलब की या अनावश्यक बात कहता है। यदि कोई सदस्य उसकी आज्ञा का पालन न करे तो वह उसे सभा से निकाल सकता है, या उसका कुछ समय तक सभा में आना बन्द कर सकता है। इन विषयों में उसका निर्णय अन्तिम माना जाता है, उसकी कहीं अपील नहीं होती। उसका बहुत आदर किया जाता है। उसे रहने को सरकारी मकान तथा हर साल ५,००० पौंड वेतन मिलता है। अपने काम से अवकाश ग्रहण करने पर वह 'लार्ड' बना दिया जाता है।

कमेटियों का सभापति मन्त्रिमंडल द्वारा नियुक्त किया जाता है। वह सब कमेटियों में अध्यक्ष का स्थान ग्रहण करता है और 'कामन्स'-सभा में उप-सभापति होता है।

क्लर्क स्थायी सरकारी कर्मचारी होता है, यह 'कामन्स'-सभा के चुनाव के साथ बदलता नहीं। इसका कर्तव्य यह है कि सभा की कार्रवाई की रिपोर्ट रखे, तथा उसे प्रकाशित करे।

'कामन्स'-सभा की कमेटियाँ—इस सभा की सबसे महत्वपूर्ण कमेटी 'पूरी सभा की कमेटी' होती है, इसमें अध्यक्ष का आसन 'स्पीकर' ग्रहण नहीं करता, कमेटियों का सभापति करता है। इस कमेटी में प्रत्येक सदस्य किसी प्रश्न पर एक-से-अधिक बार भी बोल सकता है। कार्य के अनुसार इस कमेटी के भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। उदाहरणवत् जब यह कमेटी आगामी वर्ष के खर्च के सम्बन्ध में विचार करती है इसे खर्च-कमेटी कहते हैं। जब यह आय प्राप्त करने के उपायों अर्थात् करों का विचार करती है, तो इसे आय-साधन-कमेटी ('कमेटी-आफ-वेज़ एन्ड मीन्ज़') कहते हैं।

कामन्स-सभा की अन्य कमेटियों में मुख्य ये हैं:—(१) सिलेक्ट कमेटी—यह आवश्यकतानुसार किसी क़ानूनी मसविदे पर विचार करने के लिए नियुक्त होती है। इसमें आम तौर से १५ सदस्य होते हैं।

(२) स्थायी कमेटियाँ—ये छः होती हैं। साधारणतया क़ानूनी मसविदे इन्हीं के पास भेजे जाते हैं। प्रत्येक कमेटी में ६० से ८० तक सदस्य होते हैं। (३) नियुक्ति-कमेटी या कमेटी-आफ-सिलेक्शन—इस कमेटी को कामन्स-सभा अपने अधिवेशन के आरम्भ में चुनती है। इसका काम सिलेक्ट-कमेटी तथा स्थायी कमेटियों के सदस्यों की नियुक्ति करना है। इसमें ११ सदस्य होते हैं। (४) व्यक्तिगत या 'प्राइवेट' मसविदों की कमेटी। (५) सार्वजनिक हिसाब कमेटी। (६) सार्वजनिक दर्खास्तों की कमेटी। और (७) भोजनालय तथा जलपान की कमेटी।

सिलेक्ट कमेटी को, और व्यक्तिगत मसविदों की कमेटी को उपस्थित मसविदों के सम्बन्ध में गवाही लेने का अधिकार है; अन्य कमेटियों को यह अधिकार नहीं है। जब किसी महत्वपूर्ण मसविदे पर ऐसी सिलेक्ट कमेटी नियुक्त की जाती है, जिसमें 'कामन्स' सभा और 'लार्ड' सभा दोनों के सभासद होते हैं, तो उसे संयुक्त सिलेक्ट-कमेटी कहते हैं।

'कामन्स'-सभा और मंत्रिवर्ग का सम्बन्ध—जैसा कि हम पहले कह आये हैं, मंत्रिवर्ग सब शासन-कार्य के लिए 'कामन्स'-सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। सभा के सदस्यों का यह अधिकार है कि वे मन्त्रियों से विविध प्रश्न पूछ सकते हैं, मंत्रियों के कार्यों की आलोचना कर सकते हैं, और प्रस्ताव उपस्थित कर सकते हैं। यदि किसी विभाग का कार्य असन्तोषप्रद हो तो वे उसका खर्च कम कर सकते हैं, या उसके मन्त्री का वेतन घटा सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में मन्त्रिवर्ग को इस्तीफा देना होता है।

इतना होने पर भी इंगलैंड में मंत्रिवर्ग की शक्ति दिन-पर-दिन बढ़ती जारही है। यदि मंत्रिवर्ग 'कामन्स'-सभा के ऐसे दल के सदस्यों का हो, जिसकी संख्या इस सभा में साढ़े तीन सौ से अधिक हो तो प्रधान मंत्री कामन्स-सभा की परवाह न करके, सब कार्य अपनी इच्छानुसार कर सकता है; इसमें शर्त यह है कि वह कामन्स-सभा में अपने दल के

सदस्यों की एकता बनाये रख सके, और उन्हें दूसरे दल में सम्मिलित होने से रोक सके।

'लार्ड'-सभा

दूसरी सभा की आवश्यकता—कुछ सज्जनों का मत है कि देश में क़ानून-निर्माण-कार्य के लिए एक ही सभा (जनसाधारण सभा) का होना पर्याप्त है; क्योंकि यदि दूसरी सभा रहेगी तो दो में से एक बात होगी, यह दूसरी सभा या तो कामन्स-सभा से सहमत होगी, या उसका विरोध करेगी। पहली दशा में यह सभा अनावश्यक साबित होगी और दूसरी दशा में यह सभा काम में बाधा डालनेवाली होगी। इसलिए इस मत के अनुसार दूसरी सभा नहीं होनी चाहिए।

इसके विपरीत, दूसरे राजनीतिज्ञों का मत है कि किसी देश में क़ानून बनाने की शक्ति एक ही सभा के हाथ में न रहने देना चाहिए। किसी नियम के अमल में आने से पहले उसके बारे में दूसरी सभा का निर्णय जान लेना चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि जल्दबाज़ी न हो सकेगी, तथा पहली सभा उतनी खुदमुख्तार या स्वच्छन्द न होगी, जितनी, दूसरी सभा न होने से हर समय अपनी विजय का विश्वास रखने की दशा में, उसका हो जाना सम्भव है। आजकल कितने ही देश इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हैं कि दूसरी सभा शासन-नीति की उचित रक्षा करते हुए ऐतिहासिक शृङ्खला बनाये रखे और अचानक कोई परिवर्तन न होने दे।

इंगलैंड का अनुभव—सतरहवी सदी के मध्य में इंगलैण्ड ने एक सभा से कामचलाने की पद्धति की परीक्षा की थी। जैसा दूसरी जगह कहा गया है, सन् १६४६ ई० में बादशाह का पद हटा दिया गया था। उसी समय 'लार्ड'-सभा भी अनावश्यक ठहरायी गयी थी। इंगलैण्ड ने ग्यारह वर्ष बिना बादशाह, और केवल एक ही व्यवस्थापक सभा द्वारा, राजकार्य चलाया, परन्तु अन्त में यह अनुभव

संतोषजनक न रहा और उसे, बादशाह तथा लार्ड-सभा, दोनों की फिर स्थापना करनी पड़ी।

यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ इस दूसरी सभा के सदस्य ऐसे सुयोग्य, अनुभवी, और सार्वजनिक हित चाहनेवाले होते हैं, जैसे व होने चाहिएँ। अधिकांश लार्ड बड़े ज़मींदार या धनी व्यापारी आदि होने के कारण आलसी, ऐश्वर्य-प्रेमी और अनुदार हैं; वे सुधारों का विरोध करना और जैसे-बने अपने निजी तथा पारिवारिक (या सामाजिक) अधिकारों की रक्षा करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। परन्तु कामन्स-सभा के सदस्यों का भी तो आचार-व्यवहार इतना उन्नत नहीं है, जितना कि वह उस दशा में होना चाहिए जब कि एक सभा द्वारा निश्चित की हुई व्यवस्था यथेष्ट उपयोगी हो। इसलिए यहाँ 'लार्ड'-सभा चली आ रही है, और कुछ सीमा तक उपयोगी भी समझी जाती है।

'लार्ड'-सभा का संगठन—लार्ड-सभा के सदस्य नीचे लिखे हुए, लगभग ७४० लार्ड हैं—शाही खानदान के ३, बादशाह द्वारा बनाये हुए खानदानी या पुश्तैनी अधिकार वाले ६६७ आर्कबिशप (प्रधान लाटपादरी) २, बिशप २४, आयर्लैंड के जन्म भर के लिए निर्वाचित २८, स्काटलैंड के, पार्लिमेंट की अवधि तक के लिए निर्वाचित १६। सन् १९२२ में आयरिश फ्री स्टेट (दक्षिण आयर्लैंड) ब्रिटिश संयुक्तराज्य से अलग हो गया; वहाँ के लार्ड जन्म भर के लिए लार्ड थे, ज्यों-ज्यों वे मरते गये, उनके स्थान खाली होते गये। इसके विरुद्ध, ब्रिटिश संयुक्तराज्य में समय-समय पर नये लार्ड बनते रहे हैं। कुल मिलाकर लार्डों की संख्या बढ़ती ही जाती है। यह संख्या पहले से बहुत अधिक है। डेढ़ सौ वर्ष पहले सिर्फ दो सौ लार्ड थे, अब वे सात सौ से अधिक हैं।

यह स्पष्ट है कि इस सभा में विशेष अधिकार उन्हीं लोगों को होता है जो वंशागत होते हैं, निर्वाचित नहीं होते। ये प्रायः स्वभाव से ही

परिवर्तन-विरोधी होते हैं।

नये 'लार्ड' केवल बादशाह ही बना सकता है। इस पद को कोई छोड़ नहीं सकता। निम्नलिखित व्यक्ति लार्ड सभा के सदस्य नहीं हो सकते—(१) स्त्रियाँ, (२) नाबालिग, (३) विदेशी, (४) दिवालिए और (५) राजद्रोह या किसी घोर अपराध के अपराधी।

सदस्यों के विशेषाधिकार—इस सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार निम्नलिखित हैं:—(क) लार्ड-सभा में भाषण-स्वतन्त्रता, (ख) पार्लिमेंट का अधिवेशन आरम्भ होने से चालीस दिन पहले से लेकर अधिवेशन समाप्त होने के चालीस दिन बाद तक, किसी दीवानी मामले में गिरफ़्तार न हो सकना, (ग) सार्वजनिक विषय की बात करने के लिए बादशाह से मिलना, और, (घ) राजद्रोह या अन्य घोर अपराध लगाया जाय तो उसकी लार्ड-सभा द्वारा ही जाँच होना।

शासन सम्बंधी अधिकार—'लार्ड'-सभा को धन संबंधी कानूनी मसविदों पर कोई अधिकार न होने के कारण उसे मन्त्रिमण्डल पर नियंत्रण करने का भी अधिकार नहीं है। मंत्रिमंडल अपने शासन-कार्य के लिए कामन्स-सभा के प्रति उत्तरदायी है, 'लार्ड'-सभा के प्रति नहीं। यद्यपि 'लार्ड'-सभा का प्रत्येक सदस्य किसी भी शासन-कार्य के सम्बन्ध में प्रश्न पूछ सकता है, परन्तु उसका विशेष महत्व नहीं होता। यदि मन्त्रिमंडल किसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में 'लार्ड'-सभा में हार जाय तो उसे इस्तीफ़ा देने की आवश्यकता नहीं होती। हाँ, लार्ड-सभा का शासन-कार्य में गौण रूप से काफ़ी प्रभाव रहता है। उसके कई सदस्य मन्त्रिमंडल के सदस्य होते हैं, और उनका इस पर प्रभाव पड़ता ही रहता है।

'लार्ड'-सभा का सुधार—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'लार्ड'-सभा के अधिकांश सदस्य वंशागत होते हैं। इसलिए इस सभा को देश की किसी श्रेणी के लोगों की प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। सन् १९११ ई० के कानून में यह निश्चय किया गया था कि इस सभा

के सदस्य प्रतिनिध्यात्मक सिद्धान्तों पर चुने जाया करें, परन्तु अभी तक इस सम्बन्ध में कोई ऐसी योजना तैयार नहीं हो पाई, जो सब दलों को मान्य हो। समस्या बहुत जटिल है। यदि इस सभा के सदस्य निर्वाचित रखे जायँ तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि उनका निर्वाचन करने के लिए किस योग्यता वालों को मताधिकार दिया जाना चाहिए। जब लार्ड-सभा निर्वाचित सदस्यों की सभा होगी, तो वह धन सम्बन्धी कानूनी मसविदों पर अधिकार रखना तथा मन्त्रियों का नियन्त्रण करना भी चाहेगी। कामन्स-सभा इसे ये अधिकार देना पसन्द न करेगी। दोनों सभाओं के कार्य में बड़ी उलझन पड़ जायगी। इन कठिनाइयों के कारण लार्ड-सभा के सङ्गठन का सुधार करने के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव स्वीकार नहीं हो पाता।

सातवाँ परिच्छेद

पार्लिमेंट की कार्य-पद्धति

यद्यपि राजनैतिक सिद्धान्त गढ़ने में ब्रिटिश लोग अन्य देश-वासियों से पीछे नहीं कहे जा सकते, पर ब्रिटिश विधान और शासन-व्यवस्था में परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं।

— अर्नेस्ट एटकिंसन

पार्लिमेंट के संगठन का वर्णन कर चुकने पर अब हम इसकी कार्य-पद्धति बतलाते हैं। पहले 'कामन्स'-सभा की बात लें।

'कामन्स'-सभा के सदस्यों का 'कोरम'—'कामन्स'-सभा का काम करने के लिए, सदस्यों की कम-से-कम संख्या चालीस ठहराई गई है, अर्थात् चालीस सदस्यों का 'कोरम' होता है। कभी-कभी उपस्थिति चालीस से कम होती है। जब कभी कोई सदस्य 'स्पीकर' (अध्यक्ष) का ध्यान इस कमी की ओर दिलाता है तो दो मिनट तक

सारे भवन में एक-साथ बिजली की घण्टी बजती है, और ऐसे सदस्य जो इधर-उधर कमरों में बैठे होते हैं, सभा-भवन में आ जाते हैं।

मत गिनने की शैली—जब किसी प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में सदस्यों की संख्या गिननी होती है तो निम्नलिखित शैली से काम किया जाता है। 'स्पीकर' प्रस्ताव को प्रश्न के रूप में रखता है और कहता है कि जो सदस्य इसके पक्ष में हों, वे 'हां' कहें, और जो इसके विपक्ष में हों, वे 'नहीं' कहें। सदस्य अपनी इच्छा के अनुसार 'हां' या 'नहीं', कहते हैं। 'स्पीकर' इन मतों को सुनकर कहता है कि मेरे विचार से बहुमत 'हां' के पक्ष में हैं, (या 'नहीं' के पक्ष में है)। यदि कोई सदस्य इसका विरोध करता है तो पक्ष और विपक्ष के मत गिने जाते हैं।

मत गिनने के लिए सारे भवन में दो मिनट घण्टी बजती है और जो सदस्य इधर-उधर कमरों में बैठे होते हैं, वे सभा-भवन में आकर उपस्थित हो जाते हैं। इस पर 'स्पीकर' प्रस्ताव को फिर प्रश्न के रूप में रखता है; जो सदस्य उसके पक्ष में होते हैं, वे 'हां' कहते हैं और जो विपक्ष में होते हैं, वे 'नहीं' कहते हैं। तब अध्यक्ष फिर कहता है कि मेरे विचार से बहुमत 'हां' के पक्ष में है (या 'नहीं' के पक्ष में है)। यदि कोई सदस्य इसका विरोध करे तो 'स्पीकर' कहता है कि जो 'हां' के पक्ष में हों; वे दाहिने कमरे में जायँ, और जो 'नहीं' के पक्ष में हों, वे बायें कमरे में जायँ। प्रत्येक कमरे के दरवाजे पर दो-दो गिननेवाले रहते हैं। इनमें से एक सरकारी पक्ष का होता है और दूसरा विरोधी दल का। जब सदस्य इन कमरों में जाते हैं तो उनके नाम क्लर्क द्वारा लिख लिए जाते हैं। अन्त में गिननेवाले व्यक्ति 'स्पीकर' को पक्ष और विपक्ष के सदस्यों की संख्या बतलाते हैं, और वह इसके अनुसार प्रस्ताव के, बहुमत से स्वीकृत या अस्वीकृत होने के सम्बन्ध में, अन्तिम निर्णय देता है।

सभा के अधिवेशन; बादशाह का भाषण—कामन्स-सभा

के नए निर्वाचन के बाद 'स्पीकर' का चुनाव हो जाने पर पहिला कार्य यह होता है कि प्रत्येक सदस्य राजभक्ति की शपथ ले। हर साल 'कामन्स'-सभा का पहला अधिवेशन फरवरी के आरम्भ में होने लगता है। बादशाह 'लार्ड'-सभा के भवन में अपना भाषण देता है, इसे सुनने के लिए 'कामन्स'-सभा के सदस्य वहाँ बुलाए जाते हैं। यह भाषण बहुत महत्व का होता है, इसके द्वारा मंत्रिमण्डल पार्लिमेंट को अपनी शासन सम्बन्धी नीति की सूचना देता है, और यह बतलाता है कि उसका, उस वर्ष में, क्या-क्या महत्वपूर्ण कार्य करने का विचार है।

पीछे बादशाह का यह भाषण 'कामन्स'-सभा में स्पीकर द्वारा पढ़ा जाता है। कोई मंत्री यह प्रस्ताव उपस्थित करता है कि बादशाह को उसके भाषण के लिए धन्यवाद दिया जाय। विरोधी दल के सदस्य इस प्रस्ताव पर संशोधन उपस्थित करते हैं, जिसमें वे यह बतलाते हैं कि कौन-कौनसा आवश्यक कार्य ऐसा है, जिसे सरकार नहीं कर रही है, और कौन-कौनसा कार्य वह ऐसा कर रही है, जो अनावश्यक है। इन संशोधनों पर विचार करने में दो-तीन-सप्ताह लग जाते हैं। यदि विरोधी दल का कोई संशोधन बहुमत से स्वीकार हो जाय तो इसका आशय यह होता है कि कामन्स-सभा मंत्रिमंडल की शासन-नीति से सहमत नहीं है। इस दशा में मंत्रिमंडल को इस्तीफ़ा देना होता है।

सभा की बैठक—कामन्स-सभा की बैठक सोमवार, मंगल, बुध और बृहस्पत को साधारण तौर पर पौने तीन बजे से साढ़े ग्यारह बजे रात तक होती है; यदि कोई बहुत ही आवश्यक कार्य हो तो इसके बाद भी जारी रहती है। बैठक सवा आठ बजे से साढ़े आठ बजे तक जल-पान के लिए स्थगित होती है। इस प्रकार इन दिनों में दो-दो बैठकें होती हैं। शुक्र के दिन बैठक साढ़े पांच बजे तक ही रहती है। शनिवार और इतवार को बैठक नहीं होती।

सभा का कार्य; प्रश्न और प्रस्ताव—सभा का कार्य शुरू होने से पहले, हर रोज प्रार्थना होती है। पीछे स्पीकर अपना स्थान

ग्रहण करता है, और जनता की दर्ख्वास्तें पेश की जाती हैं। यह कार्य तीन बजे तक पूरा हो जाता है और तब प्रश्न पूछने का कार्य आरम्भ होता है। इस कार्य के लिए चालीस मिनट का समय निर्धारित है। जिन प्रश्नों का उत्तर पौने चार बजे तक नहीं दिया जाता, वे रिपोर्ट में अन्य कारवाई के साथ प्रकाशित किए जाते हैं। सदस्यों को प्रश्न पूछने की सूचना पहले से देनी होती है। प्रत्येक सदस्य किसी प्रश्न के सम्बन्ध में ऐसा प्रश्न पूछ सकता है, जिससे पहले प्रश्न के उत्तर पर कुछ और प्रकाश पड़े। इसे पूरक ('सप्लिमेंटरी') प्रश्न कहते हैं। यदि किसी प्रश्न का उत्तर संतोषप्रद न हो और वह विषय जनता के लिए तत्काल आवश्यक हो, तो कोई सदस्य यह प्रस्ताव कर सकता है कि उस पर विचार करने के लिए सभा का कार्य स्थगित कर दिया जाय। यदि यह प्रस्ताव उस समय स्वीकार हो जाय, तो उस विषय पर उसी दिन साढ़े आठ बजे बहस शुरू हो जाती है। आम तौर पर चार बजे बाद प्रस्तावों और मसविदों पर विचार होता है। साल भर में 'कामन्स'-सभा प्रायः सौ दिन काम करती है, अर्थात् उसकी लगभग दो सौ बैठकें होती हैं। इनमें से अधिकतर बैठकों में वह काम होता है, जो मंत्रिमंडल द्वारा उपस्थित किया जाता है। प्रायः तीस बैठकें ही ऐसी होती हैं, जिनमें गैर-सरकारी सदस्य अपने प्रस्ताव या कानूनी मसविदे उपस्थित कर सकते हैं।

गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा बहुत-से प्रस्तावों और कानूनी मसविदों की सूचना आती है, परन्तु समय की कमी के कारण उन सब पर विचार नहीं हो सकता। इसलिए किन प्रस्तावों या कानूनी मसविदों पर विचार होना चाहिए तथा किस क्रम से विचार होना चाहिए, इसका निश्चय चिट्ठी डालकर अर्थात् 'बेलट' द्वारा किया जाता है।

कानून कैसे बनते हैं?; सार्वजनिक कानूनी मसविदे— कानूनी मसविदे तीन प्रकार के होते हैं:—(१) सार्वजनिक (धन सम्बन्धी छोड़कर), धन सम्बन्धी, और (३) स्थानीय तथा व्यक्तिगत

कानूनी मसविदे ।

सार्वजनिक कानूनी मसविदा, कोई भी सदस्य पेश कर सकता है; यदि मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य पेश करना चाहे तो उसके लिए दिन का निश्चय आसानी से हो जाता है । दूसरे सदस्य को उसका अवसर तभी मिलेगा, जब चिट्ठी डालकर अर्थात् 'बेलट' द्वारा उसका निश्चय हो जाय । प्रत्येक सदस्य को, कानूनी मसविदा उपस्थित करने की सूचना कुछ समय पहले देनी होती है, सूचना के साथ ही कानूनी मसविदा भी भेजना होता है ।

नियत किए हुए दिन, सदस्य यह प्रस्ताव करता है कि उसे उसका मसविदा पेश करने की इजाजत दी जाय । इस प्रस्ताव पर बहस नहीं होती; कभी-कभी तो केवल मसविदे का शीर्षक ही पढ़ दिया जाता है, और इजाजत मिल जाती है । इसे मसविदे का 'प्रथम वाचन' (फर्स्ट रीडिंग) कहते हैं ।

यह कार्य समाप्त होने पर उसके 'द्वितीय वाचन' (सेकिण्ड रीडिंग) के लिए तारीख निश्चय कर दी जाती है । उस निश्चित दिन सदस्य यह प्रस्ताव करता है कि मसविदा दूसरी बार पढ़ा जाय । इस समय मसविदे के सिद्धान्त पर बहस होती है, परन्तु कोई संशोधन पेश नहीं किया जा सकता । यदि प्रस्ताव उस समय स्वीकार न हुआ तो कुछ दिन बाद फिर वह प्रस्ताव रखा जाता है । जो सदस्य यह चाहते हैं कि मसविदे पर विचार ही न किया जाय, वह यह प्रस्ताव करते हैं कि यह मसविदा छः महीने बाद दूसरी बार पढ़ा जाय । यदि यह प्रस्ताव स्वीकार हो जाय, तो उस समय इस मसविदे सम्बन्धी सब काम बन्द कर दिया जाता है ।

द्वितीय वाचन का प्रस्ताव स्वीकार होने पर मसविदा साधारण तौर पर स्थायी कमेटी के पास, विचार करने के लिए भेजा जाता है । 'कामन्स' सभा यदि चाहे तो उसे 'पूरी सभा की कमेटी' के पास भेज सकती है । यदि मसविदा बहुत महत्वपूर्ण हो तो स्थायी कमेटी या

'पूरी सभा की कमेटी' के पास भेजे जाने से पहले 'सिलेक्ट कमेटी' के पास भेजा जाता है। यह कमेटी उसकी प्रत्येक धारा पर, उसके सम्बन्ध में गवाही देने वालों के वक्तव्य पर विचार करके, अपनी रिपोर्ट देती है। स्थायी कमेटी या 'पूरी सभा की कमेटी' में मसविदे की प्रत्येक धारा पर विचार होता है, और संशोधन उपस्थित होने पर स्वीकृत या अस्वीकृत किए जाते हैं। मसविदे के इस कार्य को कमेटी-मंजिल (कमेटी-स्टेज) कहते हैं। इसके तय हो जाने पर, मसविदा 'कामन्स' सभा में फिर पेश किया जाता है, और वहाँ फिर प्रत्येक धारा तथा उसके संशोधन पर विचार किया जाता है। इसे रिपोर्ट-मंजिल (रिपोर्ट-स्टेज) कहते हैं।

सब धाराओं पर विचार हो चुकने के बाद यह प्रस्ताव किया जाता है कि यह संशोधित मसविदा स्वीकार किया जाय। इसे मसविदे का 'तीसरा वाचन' (थर्ड रीडिंग) कहा जाता है। इस समय कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया जाता। प्रस्ताव स्वीकार होने पर 'कामन्स' सभा सम्बन्धी सब मंजिलें पूरी हो जाती हैं, और मसविदा 'लार्ड'-सभा में भेजा जाता है।

[लार्ड-सभा का कार्य ४॥ बजे आरम्भ होता है, और ८ बजे समाप्त हो जाता है। इस सभा में काम करने के लिए सदस्यों की कम-से-कम संख्या तीन रखी गई है। परन्तु किसी कानूनी मसविदे पर विचार करने के लिए तीस सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होती है।]

लार्ड-सभा में भी ऊपर बताए हुए तरीके से ही मसविदे का प्रथम वाचन, द्वितीय वाचन, कमेटी-मंजिल, रिपोर्ट-मंजिल, और तीसरा वाचन होता है। यदि मसविदा लार्ड-सभा में ठीक उसी रूप में स्वीकार हो जाय, जिस रूप में वह कामन्स सभा में स्वीकार हुआ है, तो वह बादशाह की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है, और उसकी स्वीकृति मिलने पर वह कानून का रूप धारण करता है।

यदि 'लार्ड'-सभा ने कानून के मसविदे में कुछ संशोधन किए तो

उन संशोधनों पर विचार करने के लिए वह मसविदा कामन्स सभा में लौटाया जाता है; यदि कामन्स सभा उन संशोधनों को स्वीकार कर ले तो मसविदा बादशाह की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है।

यदि कामन्स-सभा लार्ड-सभा के संशोधनों को अस्वीकार करदे और लार्ड-सभा उनके लिए आग्रह करे, तो उस अधिवेशन (सेशन) में उस मसविदे सम्बन्धी कार्रवाई बन्द कर दी जाती है, और दूसरे अधिवेशन में वह मसविदा कामन्स सभा में उसी रूप में पेश किया जाता है, और वहाँ ऊपर बताई हुई सब मंजिलें तय करके लार्ड-सभा में पहुँचता है। यदि लार्ड-सभा ने फिर वैसे ही संशोधन पेश किए तो उस अधिवेशन में भी उस मसविदे की आगे की कार्रवाई बन्द कर दी जाती है, और तीसरे अधिवेशन में मसविदा फिर कामन्स सभा में उपस्थित किया जाता है, और वहाँ सब मंजिल तय करके फिर लार्ड-सभा में पहुँचता है। इस बार चाहे लार्ड सभा उसमें संशोधन उपस्थित भी करे, बादशाह की स्वीकृति के लिए वह उसी रूप में भेजा जाता है, जिस रूप में कामन्स सभा ने उसे तीसरी बार स्वीकार किया था; इसमें शर्त यह है कि इस बीच में एक वर्ष का समय बीत गया हो। बादशाह के मंजूर कर लेनेपर मसविदे को कानून का रूप मिल जाता है।

इससे यह स्पष्ट है कि लार्ड-सभा धन सम्बन्धी छोड़कर अन्य सार्वजनिक कानूनी मसविदों को अधिक-से-अधिक एक वर्ष तक कानून बनने से रोक सकती है। कामन्स सभा को लार्ड सभा का विरोध होते हुए भी, कानून बनाने का अधिकार सन् १९११ ई० के कानून से मिला था। सन् १९४७ तक लार्ड सभा इन मसविदों को दो वर्ष तक कानून बनने से रोक सकती थी। पीछे दो वर्ष की जगह एक वर्ष की अवधि निर्धारित करके लार्ड-सभा की सत्ता घटा दी गई।

धन सम्बन्धी कानूनी मसविदे; (क) खर्च सम्बन्धी—धन सम्बन्धी कानूनी मसविदे दो प्रकार के होते हैं—(क) खर्च सम्बन्धी मसविदे ['कन्सोलिडेटेड फंड्स बिल'] और (ख) कर सम्बन्धी मसविदे

[फाइनेन्स बिल]। पहले हम खर्च सम्बन्धी मसविदों पर विचार करते हैं।

हर साल मार्च महीने के शुरू में खर्च सम्बन्धी पूरी सभा की कमेटी में, खर्च की मदों के प्रस्तावों पर विचार किया जाता है; ये प्रस्ताव मंत्रियों द्वारा किए जाते हैं। कोई भी सदस्य किसी मद में खर्च की रकम कम करने का संशोधन पेश कर सकता है। जब खर्च सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार हो जाते हैं तो 'आय-साधन कमेटी' में यह प्रस्ताव किया जाता है कि खर्च-कमेटी ने जो खर्च मंजूर किया है, उसकी रकम सरकारी कोष से दी जाय। इन प्रस्तावों को कानून का रूप देने के लिए 'कामन्स' सभा में खर्च सम्बन्धी कानूनी मसविदा उपस्थित किया जाता है, और वह दूसरे सार्वजनिक कानूनी मसविदों के समान, विविध मंजिलें तय करके लार्ड-सभा में पहुँचता है। इस सभा में भी वह सब मंजिलें तय करता है; और, लार्ड-सभा द्वारा संशोधित किए जाने पर भी, बादशाह के पास स्वीकृति के लिए वह उसी रूप में जाता है, जिसमें वह कामन्स-सभा द्वारा स्वीकार हुआ है;

(ख) कर सम्बन्धी कानूनी मसविदे—अप्रैल महीने के शुरू में, 'आय-साधन कमेटी' में, अर्थ-मन्त्री सरकारी आय-व्यय का अनुमान-पत्र उपस्थित करता है और करों की दर घटाने-बढ़ाने के या नये कर लगाने के प्रस्ताव करता है। कोई भी सदस्य कर की दर घटाने के संशोधन पेश कर सकता है। प्रस्तावों और संशोधनों पर क्रमशः विचार होता है, और जो प्रस्ताव स्वीकार किये जाते हैं, उन्हें कानून का रूप देने के लिये कर सम्बन्धी कानूनी मसविदा उपस्थित किया जाता है, और वह अन्य सार्वजनिक मसविदों के समान विविध मंजिलें तय करके लार्ड-सभा में पहुँचता है और इस सभा में भी वह सब मंज़िलें तय करता है। लार्ड-सभा द्वारा संशोधित किए जाने पर भी, वह बादशाह के पास स्वीकृति के लिए उसी रूप में भेजा जाता है, जिसमें वह कामन्स-सभा द्वारा स्वीकार होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'लार्ड'-सभा धन सम्बन्धी कानूनी मसविदों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती; चाहे वह मसविदे खर्च सम्बन्धी हों या कर सम्बन्धी। परिवर्तन करने का अधिकार लार्ड-सभा में सन् १६११ ई० के कानून से ले लिया गया है।

स्थानीय या व्यक्तिगत कानूनी मसविदे—स्थानीय या व्यक्तिगत कानूनी मसविदा उसे कहते हैं, जिसका सम्बन्ध सर्व-साधारण से न होकर खास स्थान से हो, और जिसके द्वारा किसी कम्पनी आदि को विशेष अधिकार दिए जायँ। जो सदस्य इस प्रकार का कानूनी मसविदा उपस्थित करना चाहता है, उसे एक दर्खास्त देनी होती है। इस दर्खास्त की जाँच खास अफसरों द्वारा की जाती है। यदि दर्खास्त नियमों के अनुसार ठीक समझी जाय तो कामन्स-सभा में उसका प्रथम वाचन होता है, तब मसविदे की शैली की जाँच होती है और द्वितीय वाचन किया जाता है। फिर मसविदा स्थानीय मसविदों की कमेटी के पास भेजा जाता है और उसकी प्रत्येक धारा पर विचार होता है। यह कमेटी गवाहों के बयान पर विचार करती है। पश्चात् इस कमेटी की रिपोर्ट पर, कामन्स-सभा विचार करती है। इसके बाद मसविदे का तीसरा वाचन होकर वह 'लार्ड'-सभा में भेजा जाता है और वहाँ सब मंजिलें तय कर चुकने पर वह बादशाह की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। परन्तु यदि लार्ड-सभा ने इसमें कोई ऐसा संशोधन उपस्थित कर दिया हो, जो कामन्स-सभा को स्वीकार न हो, तो मशविदे पर आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाती।

इस तरह के कानून बनाने में बहुत रुपया खर्च होता है। पहले तो दर्खास्त के साथ ही कुछ फीस देनी होती है, फिर मसविदा बनानेवाले को तथा उसे कामन्स-सभा में पेश करनेवाले को भी काफी फ़ीस दी जाती है। कमेटी के सामने गवाही दिलाने में भी कुछ रुपया खर्च हो जाता है। इसलिए ऐसे मसविदे बहुत कम उपस्थित किये जाते हैं।

इस परिच्छेद को समाप्त करने से पहले कमीशन और कमेटियों का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है।

कमीशन और कमेटियाँ—किसी विषय का यथेष्ट कानून बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उस समय की परिस्थिति का ठीक ज्ञान प्राप्त करके उसका मसविदा बनाया जाय। इसलिए सामयिक समस्याओं पर विचार करने के लिए समय-समय पर शाही कमीशन नियत किया जाता है, जिनके सदस्य सरकार (मंत्रिमंडल) द्वारा नियुक्त होते हैं। इसे उस विषय के सम्बन्ध में योग्य पुरुषों के बयान या गवाही लेने का अधिकार होता है। कमीशन की जाँच का हाल एक रिपोर्ट में दर्ज किया जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि सब सदस्य एकमत नहीं होते, उनमें से कुछ अपना मत अलग देते हैं, या कुल सदस्यों की दो रिपोर्ट हो जाती हैं, एक अल्पमत-रिपोर्ट, दूसरी बहुमत-रिपोर्ट। कमीशन की रिपोर्ट (या रिपोर्टों) में ऐसी सिफारिशें भी होती हैं कि अमुक विषय का कानून बनना चाहिए। इस प्रकार कानून बनानेवालों को, शासकों को, तथा शासन-पद्धति अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को, बहुत उपयोगी सामग्री मिल जाती है।

आवश्यकता होने पर किसी राजनैतिक विषय सम्बन्धी कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिए पार्लिमेंट कुछ सज्जनों की कमेटी भी नियत कर सकती है। भिन्न-भिन्न सरकारी विभाग भी कभी-कभी कोई कमीशन नियत कर सकते हैं। आधुनिक काल के बहुत से स्थायी सरकारी विभाग समय-समय पर नियुक्त किये हुए जाँच-कमीशनों की रिपोर्टों के आधार पर कायम हुए हैं।

—(*)—

आठवाँ परिच्छेद

शासन-नीति-विकास

"जब एक बार स्वाधीनता का संग्राम छिड़ जाता है तो पीढ़ियों तक रक्तपात-पूर्वक चलता है। चाहे अनेक बार घबराहट हो, अन्त में विजय अवश्य ही होती है।" — *लार्ड बाइरन*

पहले यह बताया जा चुका है, ब्रिटिश संयुक्तराज्य में, आरम्भ में शासन-अधिकार बहुत-कुछ बादशाह को था, प्रजा को बहुत कम अधिकार था। अब स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है; व्यावहारिक रूप से बादशाह के अधिकार बहुत कम है, प्रजा-प्रतिनिधि ही सारे शासन-कार्य का संचालन और नियंत्रण करते हैं। यह परिवर्तन किस प्रकार हुआ, क्या-क्या मञ्ज़िलें तय की गईं, उपस्थित कठिनाइयाँ किस तरह हल हुईं, इन बातों का विचार इस परिच्छेद में करना है।

महान अधिकार-पत्र—छठे परिच्छेद मे यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार प्रजा ने कुछ विशेष अधिकार पहले पहल 'मेगना चार्टा' (महान अधिकार पत्र) द्वारा, सन् १२१५ ई० में, प्राप्त किये थे। इसकी कुछ धारायें इस प्रकार थीं:—

१—कामन्स सभा की अनुमति बिना कोई कर नहीं लगाया जायगा।

२—गैर-कानूनी ढंग से किसी की जान माल या वैयक्तिक स्वतन्त्रता नहीं छीनी जायगी, किसी को कानून की रक्षा से वञ्चित नहीं किया जायगा। सब के साथ नियमों के अनुसार, जूरी द्वारा समान न्याय किया जायगा।

इस अधिकार-पत्र में और भी बहुत सी महत्वपूर्ण बातें थीं। परन्तु सब का मूल यह था कि (क) बादशाह अपने कार्यों में प्रजा की सलाह

अवश्य ही लिया करे, तथा देश का राजप्रबन्ध जनता की इच्छा के अनुसार हुआ करे; और (ख) प्रजा पर एक आदमी (बादशाह) की हकूमत न होकर, कानून का शासन हो। इन दो सिद्धान्तों के आधार पर पीछे नागरिक अधिकारों सम्बन्धी बहुत से कानून बने हैं। इसलिए 'मेगना चार्टा' को ब्रिटिश नागरिकों के भावी अधिकारों का आधार-शिला कहा जा सकता है।

पार्लिमेंट और बादशाह के अधिकार—तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदी में पार्लिमेंट ने कई प्रकार के राजनैतिक अधिकार प्राप्त किए। इसने एडवर्ड-दूसरे, रिचर्ड-दूसरे (तथा पीछे रिचर्ड-तीसरे और चार्ल्स-पहले) से उनके मनमाने कामों के लिए जवाब तलब किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इंगलैंड का शासन, धीरे धीरे वैध राजतन्त्र हो गया।

सोलहवीं सदी के मध्य तक लोगों को जैसे-तैसे युद्धों से छुटकारा पाने की चिन्ता थी। उन्हें शान्ति की, तथा अपना जीवन-निर्वाह करने के उपायों की, खोज थी। इन्हें प्राप्त कर, वे सोलहवीं सदी के पिछले हिस्से में राजनैतिक अधिकारों को प्राप्त करने की ओर ध्यान देने लगे। ट्यूडर वंश के शासकों ने, और विशेषतया महारानी एलिज़बेथ ने, बुद्धिमानी से राज्य करके प्रजा के सुख का सामान इकट्ठा किया, और शत्रु-देशों को हराया। इसलिए लोगों का इनसे विशेष विरोध न हुआ। परन्तु शिक्षा और व्यापार बढ़ने पर लोगों में स्वतन्त्रता के भावों का उदय हुआ; और सतरहवीं सदी में स्टुअर्ट वंश के स्वेच्छाचारी बादशाहों से पार्लिमेंट का खूब संघर्ष हुआ।

बादशाहों ने व्यापार पर कर लगाए और जबरदस्ती ऋण भी लिया परन्तु काम चलता न देख, इन्होंने बारबार पार्लिमेंट की शरण ली। जब पार्लिमेंट ने इनकी इच्छानुसार धन देना या कर लगाना स्वीकार न किया तो इन्होंने उसे भंग कर दिया। इस प्रकार धन की समस्या बराबर बनी रही। चार्ल्स-पहले ने तीसरी बार सन् १६२७ ई०

पार्लिमेंट का अधिवेशन कराया, तो पार्लिमेंट ने अधिकारों की दरख्वास्त ('पिटीशन-आफ-राइटस') पेश करदी, जिसकी मुख्य धाराएँ ये थीं :—

(१) जब तक पार्लिमेंट की स्वीकृति न मिले, बादशाह किसी को कर या ऋण देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

(२) बादशाह किसी आदमी को कैद नहीं कर सकता, जब तक कि वह ऐसा करने का कारण न बतादे, जिससे वह आदमी न्यायाधीशों द्वारा अपना निर्णय करा सके।

चार्ल्स को, न चाहते हुए भी ये बातें स्वीकार करनी पड़ीं। अधिकारों की दरखास्त के आधार पर कानून बन गया; और, बादशाह को काफी धन मिल गया। परन्तु इसके बाद उसने ग्यारह वर्ष (सन् १६२६-४०) तक बिना पार्लिमेंट के शासन किया। पीछे पार्लिमेंट ने गैर-कानूनी कर बन्द कर दिए तथा कई उपयोगी नियम बनाए।

प्रजा की विजय—सन् १६४१ ई० में 'कामन्स'-सभा ने महान विरोध-पत्र (ग्रांड रिमांस्ट्रेंस) पेश किया, इसमें एक माँग यह भी थी कि जब तक पार्लिमेंट स्वीकार न करे, मन्त्रियों की नियुक्ति न की जाय। बादशाह के अवहेलना करने पर, उसका पार्लिमेंट से युद्ध हुआ, जिसमें बादशाह की हार हुई, और अन्त में उसे, मुक़दमा चलने पर, न्यायाधीशों के फैसले के अनुसार प्राणदंड भोगना पड़ा। इस प्रकार पार्लिमेंट की अनोखी विजय हुई। हाँ, कुछ समय बाद वह सैनिक शक्ति से दब गई। इसने ग्यारह वर्ष (१६४६—६०) बिना बादशाह के शासन करने की परीक्षा की, परन्तु इसमें यह सफल न हुई; और, बादशाह के पद की दुबारा स्थापना ('रिस्टोरेशन') करनी पड़ी। परन्तु जब चार्ल्स-दूसरे तथा उसके बाद जेम्स-दूसरे ने प्रजा के अधिकारों का लिहाज न रखकर कैथलिक धर्म वालों का पक्षपात किया, तथा बादशाह के 'दैवी अधिकार' के सिद्धान्त को व्यवहार में लाना चाहा तो प्रजा ने यथेष्ट विरोध किया। जेम्स के समय, इंगलैंड में महान क्रान्ति ('ग्रेट

रिवोल्यूशन') हुई। पार्लिमेंट ने उसके दामाद विलियम को, जो आरेंज का ड्यूक था, बुला भेजा। उसके, एक भारी डच सेना सहित, आजाने पर सारा इंगलैंड उसकी ओर हो गया और जेम्स को वहाँ से भाग कर ही अपना पिंड छुड़ाना पड़ा। इंगलैंड के शासन का भार विलयम (तीसरे) और उसकी स्त्री मेरी को सौंप दिया गया। उसी अवसर पर (१६८६) पार्लिमेंट ने अधिकारों का मसविदा ('बिल-आफ-राइट्स') स्वीकार किया जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं।

१—कोई केथलिक मतवाला आदमी बादशाह न हो सकेगा।

२—बादशाह को राजनियम भंग करने का अधिकार नहीं है।

३—पार्लिमेंट ('कामन्स'-सभा) का निर्वाचन स्वतंत्र हुआ करेगा।

४—पार्लिमेंट में सभासदों को भाषण करने की स्वतंत्रता होगी, और उसकी अनुमति बिना कोई कर न लगाया जायगा।

यह भी निश्चय किया गया कि बादशाह को भारी सेना रखने का अधिकार नहीं है।

इस तरह, इस क्रांति से राजसत्ता प्रजा के हाथ में आगयी, पार्लिमेंट को राजकोष पर पूरा अधिकार हो गया, और उसकी शक्ति यहाँ तक बढ़ गई कि बादशाह के निजी खर्च (सिविल लिस्ट) के लिए भी पार्लिमेंट की स्वीकृति अनिवार्य हो गई।

थोड़े में, यह कहा जा सकता है कि सोलहवीं सदी तक 'कामन्स'-सभा पर बादशाह (तथा लार्ड-सभा) का प्रभुत्व रहा। सतरहवीं सदी में कामन्स-सभा का प्रभाव बढ़ने लगा। कुछ प्रयत्नों के बाद यह निश्चय हो गया कि सार्वजनिक तथा धन सम्बन्धी कानूनी मसविदे पहले कामन्स-सभा में पेश किए जायँ, उसके बाद लार्ड-सभा में; और अन्त में बादशाह की स्वीकृति से काम में लाए जायँ। फिर धीरे-धीरे कामन्स-सभा के अधिकार बढ़ते गए।

शारीरिक स्वाधीनता—बहुधा ऐसा होता था कि बादशाह या दूसरे अधिकारी अपने विरोधियों को बेकसूर होने पर भी बेहद

समय के लिए कैद या नजरबन्द कर देते थे। इसे रोकने के लिए पार्लिमेंट ने कई कानून बनाए; उनमें सन् १६७९ का 'हेबियस कार्पस एक्ट' मुख्य है। इसके अनुसार, गैर-कानूनी ढङ्ग से नजरबन्द या कैद किया हुआ आदमी (या उसकी तरफ से कोई दूसरा आदमी) हाईकोर्ट में यह दरख्वास्त दे सकता है कि अधिकारियों को यह आज्ञा दी जाय कि वे नज़रबन्द या कैद आदमी को हाईकोर्ट में उपस्थित करें। उस आदमी के हाईकोर्ट में उपस्थित किए जाने पर, यदि हाईकोर्ट को उसकी नजरबन्दी या कैद गैर-कानूनी होने का विश्वास हो जाय तो हाईकोर्ट उसके स्वतंत्र किए जाने की आज्ञा दे देता है।

सुधार-कानून—अठारहवीं सदी के अन्त तक, बादशाह और उनके मन्त्री होशियारी से लोगों को रिश्वत देकर तथा उजड़े हुए नगरों की ओर से चुने जानेवाले प्रतिनिधियों पर अपना दबाव डालकर पार्लिमेंट में, जैसे लोगों को चाहते थे, वैसों को बड़ी संख्या में भेजने में सफल हो जाते थे। यह संख्या पार्लिमेंट के कुल सदस्यों की संख्या के आधे से अधिक हो जाती थी। धीरे-धीरे लोगों में राजनैतिक विषयों की दिलचस्पी बढ़ने लगी। इस पर सन् १८३२ ई० में पार्लिमेंट के चुनाव के सुधार का कानून ('रिफ़ार्म बिल') पास हुआ। इससे पार्लिमेंट का संगठन बहुत बदल गया। जिन उजड़े हुए नगरों की ओर से केवल उनके स्वामी अमीर लोग ही प्रतिनिधि चुन देते थे, उनके प्रतिनिधि लेना बन्द या कम कर दिया गया। नए-नए व्यापारी नगर बस गए थे, उन्हें प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार अमीरों की शक्ति कम होकर, व्यापारियों के अधिकार बढ़ गए।

जनता का अधिकार-पत्र—इस सुधार-कानून के पास होजाने पर भी बहुत-से आदमी असन्तुष्ट थे। व्यापारियों और दुकानदारों को मताधिकार प्राप्त हो गया था; परन्तु मजदूरों को नहीं मिला था। इसलिए लोगों में आन्दोलन होता रहा, और अन्त में बहुत-से आदमी

जनता के अधिकार-पत्र ('पीपल्स चार्टर') का समर्थन करने लगे। इन्हें 'चार्टिस्ट' कहा जाता है। सन् १८४८ ई० में इन्होंने ये मांगें रखीं—

१—इक्कीस वर्ष या इससे अधिक आयु वाले सब आदमियों को मताधिकार हो।

२—निर्वाचन के लिए राज्य को, बराबर-बराबर के निर्वाचन-जिलों में बांटा जाय।

३—मत या 'वोट', पर्चे डालकर ('बेलट' द्वारा) लिए जायं।

४—प्रत्येक बालिग आदमी निर्वाचित किया जा सके, चाहे उसके पास कुछ जायदाद हो या न हो।

५—पार्लिमेंट के सदस्यों को तनख्वाह मिला करे।

सरकार ने उस समय तो इस आन्दोलन का दमन कर दिया, परन्तु उसे १८६७ में दूसरा सुधार-कानून पास करके, नगरों में रहने वालों को मताधिकार देना पड़ा। पीछे सन १८८४ ई० में तीसरा सुधार-कानून पास करके ग्रामों में भी मत देनेवालों की संख्या बढ़ा दी गई। ऊपर बतलाई हुई मांगों में से नं० ३ और ५ कानून बन गई हैं।

सन् १६११ का पार्लिमेंट एक्ट; कामन्स सभा की विजय

इंगलैंड की राजनैतिक दलबन्दी का वर्णन आगे किया जायगा। उन्नीसवीं सदी में यहाँ दो दल या पार्टियाँ मुख्य थीं—उदार और अनुदार। 'लार्ड'-सभा के ज्यादहतर सदस्य प्रायः अनुदार होते हैं। इसलिए जब कभी 'कामन्स'-सभा में उदार दल वालों का बहुमत हुआ और उन्होंने कोई सार्वजनिक हित का नियम जारी करना चाहा तो अक्सर लार्ड-सभा उसे रद्द कर देती। बारबार की हार ने उदार दलवालों को लार्ड-सभा का विरोधी बना दिया। उन्होंने ठान लिया कि इस सभा से होनेवाली बाधा को दूर कर दें। इस इरादे से सन् १६१० ई० में कामन्स सभा ने एक कानूनी मसविदा पास किया। लार्ड-सभा उसे पास कराना नहीं चाहती थी। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि इसे

पास कराने के लिए बादशाह काफी संख्या में ऐसे आदमियों को 'लार्ड' बनाकर लार्ड-सभा में भेज देगा, जो उस कानून का समर्थन करें, तो लार्ड-सभा ने अपना विरोध हटा लिया, और वह मसविदा पास हो गया। यह "सन् १६११ का पार्लिमेंट-एक्ट" कहलाता है। इसकी मुख्य धाराएँ इस प्रकार हैं :—

१—किसी धन सम्बन्धी मसविदे को, यदि कामन्स-सभा स्वीकार करले, तो चाहे लार्ड-सभा उसे न भी स्वीकार करे, बादशाह की सम्मति से वह अमल में आ जायगा।

२—यदि किसी सार्वजनिक कानूनी मसविदे पर लार्ड-सभा और कामन्स सभा में मतभेद हो तो वह मसविदा ज्यों-का-त्यों कामन्स सभा के अगले अधिवेशन में पेश होगा। कामन्स-सभा के तीसरी बार उसे पास कर लेने पर, तथा दो वर्ष का समय बीत जाने पर, फिर लार्ड-सभा से पूछने की आवश्यकता न रहेगी; बादशाह की स्वीकृति से वह कानून बन जायगा। इस प्रकार लार्ड-सभा के निषेध ('वीटो') अधिकार का अन्त होकर, उस सभा को दो वर्ष तक कार्रवाई स्थगित करने का अधिकार रह गया। [सन् १६४७ के बाद यह कार्रवाई स्थगित करने की अवधि दो वर्ष की जगह एक वर्ष रह गई।]

३—कामन्स-सभा का नया चुनाव प्रति पाँचवें वर्ष होगा।

इस कानून से सरकारी कोष तथा धन सम्बन्धी कानूनी मसविदों पर कामन्स-सभा का पूरा अधिकार हो गया। सरकारी आय का बड़ा भाग सार्वजनिक करों से वसूल होता है, इसलिए इस विषय में जनता के प्रतिनिधियों का अधिकार होना ही चाहिए। अब इस कानून से इंगलैंड की शासन-नीति के सम्बन्ध में भी, लार्ड-सभा पर, कामन्स-सभा का दबदबा हो गया। रहा बादशाह; प्रत्येक विषय में उसकी स्वीकृति तो अवश्य ली जाती है, परन्तु वह एक रिवाज मात्र है। इस प्रकार इङ्गलैंड का शासन वास्तव में कामन्स-सभा के हाथ में आ गया।

स्त्रियों का मताधिकार—इंगलैंड में स्त्रियों के राजनैतिक

अधिकारों का प्रश्न उन्नीसवीं सदी के शुरू में उठा था। परन्तु साठ वर्ष तक सर्वसाधारण ने इस ओर ध्यान न दिया। पीछे धीरे-धीरे स्त्रियों के मताधिकार सम्बन्धी संस्थाएँ स्थापित हुईं। आन्दोलन बढ़ता गया। पार्लिमेंट में कई बार इस विषय के प्रस्ताव और वादविवाद हुए; परन्तु विरोधियों का बल अधिक रहने के कारण प्रस्ताव स्वीकार न हो पाये। तथापि मताधिकार चाहनेवाली स्त्रियों तथा उनके उद्देश्य से सहानुभूति रखनेवालों के लगातार आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि अनेक राजनीतिज्ञ तथा पार्लिमेंट के कई प्रभावशाली पदाधिकारी स्त्रियों को यह अधिकार देने के पक्ष में हो गए। अन्त में सन् १६१८ ई० में तीस या अधिक वर्ष की उम्र वाली स्त्रियों को मताधिकार मिल गया। पीछे सन् १६२८ ई० में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही, (अर्थात् २१ वर्ष या इससे अधिक उम्र की स्त्रियों को) मताधिकार मिल गया। [सन् १६३५ में ग्रेटब्रिटेन में ३०६ लाख निर्वाचक थे:—१४४ लाख पुरुष और १६२ लाख स्त्रियाँ। इस प्रकार पर्लिमेंट की रचना में स्त्रियों का प्रभाव पुरुषों से अधिक है।

उपसंहार—अंगरेज जाति ने लगातार आन्दोलन करके अपने राज्य के शासन को खुदमुख्तार या स्वेच्छाचारी राजतंत्र से, परिमित या वैध राजतंत्र में बदल लिया; यहाँ तक कि अब बादशाह प्रायः नाममात्र का शासक है, और शासनाधिकार मंत्रिमंडल को है, जो जनता के प्रतिनिधियों द्वारा बनी हुई 'कामन्स' (जनसाधारण) सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। यद्यपि प्रजातंत्र के आदर्श को प्राप्त करने में अभी और बहुत से सुधारों की आवश्यकता है, इंगलैंड में प्रजातन्त्र का युग आरंभ होगया है। यह युग ठीक कब से आरम्भ हुआ, यह तो नहीं बताया जा सकता; हाँ, मोटे हिसाब से यह कह सकते हैं, कि यह युग उन्नीसवीं सदी, तथा उसमें भी सन् १८३२ ई० से शुरू हुआ। इससे स्पष्ट है कि यह युग अभी सवा सौ वर्ष का भी नहीं हुआ। इससे पहले भी जनता ने बहुत से अधिकार प्राप्त किए थे, पर उनमें ज्यादहतर धनवानों की ताकत

बढ़ी थी। पिछले मौ वर्षों में साधारण जनता को शासन-कार्य में विशेष स्थान मिलने लगा है।

अभी यह नहीं कहा जा सकता कि इंगलैण्ड में अमल में प्रजातंत्र शासनपद्धति जारी हो गयी है, या कामन्स-सभा साधारण जनता की प्रतिनिधि है। राजनैतिक दलों के सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा। प्रायः कामन्स सभा में अनुदार दल के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक रही है, और इनमें से कितने ही व्यक्तियों का, बड़ी-बड़ी व्यापारिक, औद्योगिक या बीमा कम्पनियों से सम्बन्ध होता है, या वे कोयले, लोहे या अस्त्र-शस्त्र आदि के कारखानों के हिस्सेदार या संचालक होते हैं। ये सदस्य जैसे बने अपने वर्ग का स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहते हैं। मंत्रिमण्डल में इनका काफी प्रभाव रहता है। यही नहीं, अनुदार दल के कितने ही सदस्य मंत्रिमण्डल में आने से पहले स्वयं किसी कम्पनी या कारखाने आदि के डायरेक्टर रह चुकते हैं; ये लोग मंत्रिमंडल में शामिल होते समय, डायरेक्टरी से इस्तीफा दे देते हैं, और पीछे मंत्रिमंडल से जुदा होते ही फिर अपना पुराना पद ले लेते हैं। इनका कुछ-न-कुछ सम्बन्ध कम्पनियों या कारखानों से बना रहता है। इसलिए ये राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में जो निर्णय करते हैं, वह निस्पक्ष या सार्वजनिक हित की दृष्टि से नहीं होता; यहाँ तक कि युद्ध छेड़ने या चलाने में भी लोकमत की उपेक्षा की जा सकती है। इस शोचनीय दशा में आशा की किरण यही है कि इंगलैंड में मज़दूर दल बढ़ रहा है। ये लोग निजी स्वार्थ-साधन में नहीं लगे रहते, और पूँजीवादी विचारों के विरोधी होते हैं। ज्यों-ज्यों इनकी संख्या और शक्ति बढ़ेगी, शासन-कार्य में जनता की भावना अधिक जाहिर होगी।

नवाँ परिच्छेद

राजनैतिक दलबन्दी

प्राक्कथन—राजनैतिक दल या 'पार्टी' ऐसे मनुष्यों के समूह को कहते हैं, जिनके मुख्य-मुख्य राजनैतिक प्रश्नों पर एक ही तरह के विचार हों, और जो राजकाज में इन विचारों का प्रचार करने के लिए संगठित हुए हों। इंगलैंड में सरकार का कभी एक राजनैतिक दल के हाथ में होना, फिर उसके हाथ से निकलकर दूसरे दल के हाथ में चला जाना, वहाँ के शासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इस परिच्छेद में हम यह बतलाएंगे कि इंगलैंड के शासन-कार्य में दलबन्दी की प्रथा कैसे आरम्भ हुई और कैसे उसका विकास हुआ।

पहले बहुत समय तक इंगलैंड में अलग-अलग राजनैतिक दल नहीं थे। असल में सोलहवीं सदी तक दलबन्दी के लिए अनुकूल स्थिति ही नहीं थी। जनता में उस समय तक राजनैतिक जागृति नहीं हुई थी; वह बहुत-कुछ अपने बादशाहों के अधीन थी। पार्लिमेंट के अधिवेशन बहुत कम होते थे। उसके सदस्यों को ऐसा अवसर नहीं मिलता था कि वे एक-दूसरे को अच्छी तरह जानलें और किसी विषय पर अपना मत संगठित कर सकें। बादशाह खास-खास आदमियों को ही मंत्री चुनता था। सदस्यों को सरकारी कार्य का ज्ञान या अनुभव बहुत कम होता था। इसलिए मंत्रियों का भी असली विरोध उस समय तक नहीं होता था, जब तक कि पार्लिमेंट उनके विरुद्ध अपने अधिकार का उपयोग करने के लिए पूरी तौर से तैयार न हो जाय।

दलबन्दी का सूत्रपात—इंगलैंड में राजनैतिक दलों की पहली झांकी स्टुअर्ट खानदान के बादशाहों के समय में मिलती है। ये बादशाह अपने अधिकारों को ईश्वर के दिए हुए समझते थे। इसके खिलाफ, पार्लिमेंट के बहुत-से सदस्यों का मत था कि उन्हें बादशाह का नियंत्रण करने का अधिकार है। इस मतभेद के कारण इंगलैंड में बड़ा गृह-युद्ध ('सिविल वार') हुआ। उसमें पार्लिमेंट की सेना की विजय हुई। बादशाह चार्ल्स-पहले को फांसी दी जाने का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस समय से पार्लिमेंट में दो दल हो गए—एक बादशाह का समर्थक; दूसरा, प्रजा के पक्ष का।

कुछ वर्ष प्रजा-पक्ष वाले लोगों का बोलबाला रहा। उनका नेता आलिवर क्रामवेल, 'देश-रक्षक' की उपाधि से, प्रधान अधिकारी रहा। राजगद्दी खाली पड़ी रही। परन्तु क्रामवेल की मृत्यु के बाद, यह बात दूर हो गई। उसका पुत्र अयोग्य था। बादशाह के पक्ष के लोगों का बहुमत हो गया। चार्ल्स-पहले का पुत्र चार्ल्स-दूसरा राजगद्दी पर बैठा दिया गया।

'टोरी' और 'विग'—इस बादशाह का भाई (जेम्स-दूसरा) पक्का रोमन केथलिक था। उसे गद्दी पर बैठने का अधिकार न रहे, इस आशय का कानूनी मसविदा पार्लिमेंट में पेश किया जाने पर, फिर दोनों दलों का आपस में विरोध हुआ। जेम्स-दूसरे के तरफदार 'टोरी' और उसके विरोधी 'विग' कहलाने लगे। संक्षेप में शासनपद्धति के लिए 'टोरी' अनुदार भाव रखते थे, और 'विग', सुधारक।

सरकार की बागडोर कभी एक दल के हाथ में चली जाती, कभी दूसरे के हाथ में। पहले कहा जा चुका है कि अठारहवीं सदी में दो बादशाह—जार्ज-पहला, और जार्ज-दूसरा—अंगरेज़ी भाषा न समझ सकने के कारण मंत्रिमण्डल के वादविवाद में भाग नहीं ले सकते थे; इससे शासन-अधिकार बहुत-कुछ प्रधान मंत्री के हाथ में चला गया। यह मंत्री उस दल का नेता होता था, जिसके सदस्यों की संख्या, पार्लिमेंट

में, अधिक संख्या होती थी। सर राबर्ट वालपोल पहला प्रधान मंत्री था।

जार्ज-तीसरे के शासन-काल में इंगलैंड के उन उपनिवेशों ने स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया, जिन्हें अब अमरीका के संयुक्त-राज्य कहते हैं। 'विग' दल के सदस्यों को उनसे सहानुभूति थी, वे उनकी इस माँग को स्वीकार करने के पक्ष में थे कि उनकी रज़ामन्दी के बिना उनपर कर न लगाया जाय। परन्तु मंत्रिमंडल टोरी दल का होने के कारण उन उपनिवेशों से युद्ध किया गया, जिसमें आखिर उनकी विजय होने से 'टोरी' दल का प्रभाव घट गया और सरकार की बागडोर 'विग' दल के हाथ में चली गई।

सन् १७८१ ई० में फ्रांस की राजक्रान्ति हुई। कुछ वर्ष बाद क्रांतिकारियों के अत्याचार हुए तो इंगलैंड में 'विग' दल का प्रभाव कम रह गया। अब 'टोरी' दल ने ज़ोर पकड़ लिया और नेपोलियन के साथ युद्ध रहने तक इसी दल का ही प्रभुत्व रहा। युद्ध समाप्त हो जाने पर लोगों के विचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ, तो मंत्रिमण्डल फिर 'विग' दल का हो गया; और उसके प्रयत्न से १८३२ ई० में पार्लिमेंट के निर्वाचन सम्बन्धी सुधार के लिए 'रिफ़ार्म बिल' पास हुआ, जिसका ज़िक्र पहले किया जा चुका है।

उदार और अनुदार दल—उन्नीसवीं सदी के शुरू में 'विग' और 'टोरी' दलों के नाम धीरे-धीरे 'लिबरल' और 'कंजर्वेटिव' हो गए। 'लिबरल' का अर्थ उदार है; और 'कंजर्वेटिव का अर्थ' है दकियानूसी या पुरानी बातों पर अड़ा रहनेवाला। उदार दल का विरोधी होने के कारण यह दल साधारण बोलचाल में अनुदार कहा जाता है। 'लिबरल' दल में अकसर ऐसे आदमी होते हैं, जो वर्तमान परिस्थिति से असन्तुष्ट तथा उसका सुधार चाहनेवाले हों। कंजर्वेटिव वह कहलाते हैं जो वर्तमान स्थिति को बनाए रखना, और उसमें कोई विशेष परिवर्तन न करना चाहते हों। ये लोग प्रायः धनवानों और धर्माचारियों की सत्ता के समर्थक होते हैं।

उदार और अनुदार शब्द, अमल में इन दलों पर पूरे तौर से लागू नहीं होते। इंगलैंड के इतिहास में कभी-कभी उदार दल ने अनुदारता का, और अनुदार दल ने उदारता का भी व्यवहार किया है। विदेश-नीति और विशेषतया भारतवर्ष के सम्बन्ध में, दोनों दलों के विचारों में खास अन्तर नहीं रहा है। किसी ने व्यंग में कहा—'जैसे लिबरल वैसे टोरी, जैसे नाला वैसे मोरी'।

मजदूर दल—उन्नीसवीं सदी के मध्य में एक नए दल का जन्म हुआ, यह मजदूर दल या 'लेबर पार्टी' कहलाता है। इसके सदस्य अकसर मजदूर-संघों, सहकारी समितियों आदि के प्रतिनिधि होते हैं। इनका एक प्रधान सिद्धान्त यह होता है कि मजदूरों आदि के सार्वजनिक हित को लक्ष्य में रखकर सरकार को चाहिए कि वह उद्योग-धन्धों आदि का पूर्ण नियंत्रण करे। पहली बार सन् १८८५ ई० में, मजदूर दल के सदस्य पार्लिमेंट के निर्वाचन में चुने गए।

कम्यूनिस्ट दल—सन् १६१४-१८ के योरपीय महायुद्ध के बाद, रूस में जागृति और उन्नति होने पर, इंगलैंड में भी कम्यूनिस्ट दल का जन्म हुआ। यह दल समाजवादी विचारों का है; इसके विचार मजदूर दल से बहुत मिलते हैं। सब से पहले, सन् १६३५ के चुनाव में इस दल का एक आदमी कामन्स सभा का सदस्य चुना गया था।

अन्य दल—इन दलों के अलावा और भी कई दल हैं, पर वे छोटे-छोटे हैं। समय-समय पर नए दल बनते रहते हैं, और कुछ पुराने दलों का लोप होता रहता है। किसी-किसी दल में दो-तीन दलों के सदस्य भी मिल जाते हैं। जिस अकेले या संयुक्त दल के सदस्यों का मन्त्रिमंडल बनता है, वह सरकारी दल कहलाता है। और, जिस एक या अधिक दलों के सदस्य सरकारी नीति का विरोध या आलोचना करते हैं, उन्हें विरोधी दल कहा जाता है।

आधुनिक स्थिति—सन् १६२४ से पहले उदार या अनुदार

दल का ही मंत्रिमण्डल बनता रहा। मजदूर दल ने सब से पहले १६२४ में अपना मन्त्रिमंडल बनाया। लेकिन कामन्स सभा में इस दल के सदस्यों की संख्या काफी नहीं थी, इसलिए ये उदार दल वालों के सहयोग से काम कर सके। आखिर, नौ महीने में यह दल हार गया, और शासन की डोर अनुदार दल के हाथ में चली गई। दूसरी बार सन् १६२६ में मजदूर दलका मन्त्रिमण्डल बना, पर इस बार भी उसकी वैसी ही दशा रही। इंगलैंड के इतिहास में सबसे पहले १६४५ के चुनाव में इस दल का स्पष्ट स्वतन्त्र बहुमत हुआ, और इसका स्वावलंबी मन्त्रिमण्डल बना। इस पुस्तक के समय (मई १६४६) तक यही मन्त्रिमण्डल काम कर रहा है।

दलबन्दी से हानि-लाभ—पराधीन देशों में आदमियों का मुख्य कर्तव्य, देश की गुलामी दूर करना, होता है। उस दशा में मतभेद और दलबन्दियों का होना बहुत घातक होता है। परन्तु जब देश स्वाधीन हो, तो यदि उनकी उन्नति के लिए अलग-अलग विचार वाले कार्यकर्ता अपना जुदा-जुदा संगठन करलें और राजशक्ति प्राप्त करने में एक-दूसरे से प्रतियोगिता या होड़ करें तो राजनैतिक दृष्टि से कोई हानि नहीं है; बल्कि इससे लाभ ही है, क्योंकि प्रत्येक दल अपने आपको जनता में दूसरे दलों से अधिक प्रिय बनने के लिए, देशोन्नति के कार्यों में अधिक प्रयत्नशील होगा। हाँ, नागरिकों की निजी अथवा नैतिक दृष्टि से, स्वाधीन देशों में भी दलबन्दी नीति का समर्थन नहीं किया जा सकता। सदस्य अपने दल की उन्नति या वृद्धि के लिए दूसरों को तरह-तरह का प्रलोभन देते हैं, और अपनी विजय के लिए बड़े दांव-पेंच का जीवन बिताते हैं। उन्हें विषय का ज्ञान न होते हुए, अथवा खिलाफ राय रखते हुए भी, उस ओर मत देना पड़ता है, जिस ओर उनके दल के दूसरे सदस्य देते हों। सच्चे स्वराज्य में ऐसी बातें न होनी चाहिएं।

———

दसवाँ परिच्छेद

न्यायालय

प्रत्येक राज्य के कार्यों के तीन भाग किए जा सकते हैं :—(१) कानून बनाना, (२) शासन, और (३) न्याय। इनमें से पहले दो कामों का वर्णन हो चुका। इस परिच्छेद में न्यायालयों के विषय में आवश्यक बातें बतलायी जायँगी।

न्याय-कार्य—ब्रिटिश संयुक्तराज्य के न्याय-कार्य की विशेषताएँ ये हैं :—

१—ब्रिटिश संयुक्त-राज्य में प्रत्येक आदमी को कानून का समान रूप से पालन करना होता है। वहाँ सभी वर्गों के आदमियों के लिए साधारण न्यायालय हैं, किसी वर्ग के लिए विशेष नहीं। बादशाह के बारे में तो हम पहले ही बता चुके हैं कि उसके कामों के उत्तरदाता मंत्री होते हैं। मन्त्रियों तथा शासकों के विरुद्ध भी मामले उन्हीं अदालतों में सुने जाते हैं, जिनमें दूसरे नागरिकों के विरुद्ध सुने जाते हैं; और, हरेक आदमी को अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता में अनुचित और गैर-कानूनी हस्तक्षेप करनेवालों के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार है। इसका विशेष विचार पहले हो चुका है।

२—न्यायाधीशों को, प्रधानमन्त्री या लार्ड-चाँसलर (लार्ड-सभा के अध्यक्ष) की सिफारिश से बादशाह नियत करता है। वे अपने पद से उस समय तक नहीं हटाये जा सकते, जब तक कि वे नेकचलनी से अपना कार्य करते रहें और पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ बादशाह को उन्हें उनके पद से जुदा करने की सिफारिश न करें। यही कारण है कि इंगलैंड में न्याय-कार्य स्वतन्त्रता-पूर्वक होता रहता है, और उस पर

शासकों का किसी प्रकार अनुचित प्रभाव नहीं पड़ने पाता।

३—सब फौजदारी मामलों और अधिकाँश दीवानी मामलों का फैसला 'जूरी' के निर्णय के अनुसार किया जाता है। प्रत्येक मुकदमे के आरम्भ होने के समय, न्यायाधीश ऐसे पाँच-सात स्थानीय आदमियों को चुन लेता है, जो उसके साथ मुकदमे का हाल सुनते हैं और अन्त में मुकदमे की घटनाओं के सम्बन्ध में अपनी राय देते हैं। न्यायाधीश इनकी राय के आधार पर, कानून के अनुसार मुकदमे का फैसला करता है। इससे मुकदमे पर अच्छी तरह विचार हो जाता है और अन्याय होने की सम्भावना बहुत ही कम रह जाती है।

४—स्त्रियाँ न्यायाधीश अथवा जूरी की सदस्य हो सकती हैं।

फौजदारी सम्बन्धी न्याय की विशेषताएँ—(१) इंगलैंड में किसी आदमी पर फौजदारी का मुकदमा तब तक नहीं चल सकता, जब तक उसके अपराध की जाँच कोई अफसर अच्छी तरह न करले, और उसे उसके अपराधी होने की सम्भावना मालूम न हो।

(२) अभियुक्त को यानी जिस पर मुकदमा चलाया जाय, अपराधी साबित करने का सब भार मुकदमा चलानेवाले पर रहता है।

(३) अभियुक्त का विचार 'जूरी' द्वारा होता है। यदि अभियुक्त को जूरी के किसी सदस्य के निष्पक्ष होने के बारे में सन्देह हो तो वह, कार्रवाई आरम्भ होने से पहले, एतराज कर सकता है।

(४) अभियुक्त का विचार खुली अदालत में होता है, और उसके खिलाफ जो गवाहियाँ ली जाती हैं, वे शपथ देकर ली जाती हैं।

(५) जूरी का निर्णय अन्तिम निर्णय होता है। प्रत्येक अपराध के दण्ड की सीमा कानून से ठहराई हुई है।

इन विशेषताओं के कारण, इङ्गलैंड में फौजदारी मामलों में, अन्य देशों की अपेक्षा अधिक न्याय होता है।

न्याय की प्रधान अदालत—इंगलैंड की सबसे बड़ी अदालत को सुप्रीम कोर्ट कहते हैं। इस अदालत के दो भाग हैं:—(१) हाई-

कोर्ट और (२) अपील कोर्ट। हाईकोर्ट में दीवानी, फौजदारी तथा अन्य प्रकार के सब मुकदमों पर विचार होता है। इसमें लगभग बीस न्यायाधीश रहते हैं। हाईकोर्ट नीचे की अदालतों के काम का निरीक्षण करता है तथा उनके किये हुए फैसलों की अपील सुनता है। अपील कोर्ट में नौ न्यायाधीश होते हैं। अपील-कोर्ट हाईकोर्ट के, तथा कुछ खास हालतों में नीचे की अदालतों के फैसलों की अपील सुनता है।

लार्ड-सभा के न्याय सम्बन्धी अधिकार—पहले बताया जा चुका है कि किसी लार्ड की राजद्रोह या अन्य घोर अपराध सम्बन्धी जाँच लार्ड-सभा में ही होती है। मिसाल के तौर पर भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल लार्ड वारेनहेस्टिंग्स पर उनके भारतीय शासन सम्बन्धी कार्यों के लिए मुकदमा लार्ड-सभा में ही चलाया गया था। लार्डों की जागीर से सम्बन्ध रखनेवाले मुकदमों का निर्णय भी लार्ड-सभा ही करती है। यदि कामन्स सभा किसी लार्ड पर इलजाम लगाती है, या उससे जवाब-तलब करती है तो यह कार्य लार्ड-सभा में ही होता है। अपील-कोर्ट के फैसलों की अपील भी लार्ड-सभा में ही होती है। इस प्रकार लार्ड-सभा ब्रिटिश संयुक्तराज्य की सबसे ऊँची अदालत है। सिद्धान्त से तो पूरी लार्ड-सभा ही न्यायालय का कार्य कर सकती है, परन्तु व्यवहार में न्याय-कार्य लार्ड चांसलर और ६ 'ला' (कानून)-लार्डों द्वारा होता है जो कानून के अच्छे जानकार होते हैं, और न्याय करने के लिए जन्म भर के वास्ते लार्ड बनाये जाते हैं। इन्हें कभी-कभी कानून के दूसरे जानकारों से सहायता मिलती है।

अन्य बातें—कुछ ब्रिटिश उपनिवेशों की ऊँची अदालतों के फैसलों की अपील 'प्रिवी कौंसिल' की न्याय-समिति में होती है, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। ब्रिटिश संयुक्त-राज्य में, किसी कानून का अर्थ लगाने में मतभेद हो जाने पर उसका अन्तिम निर्णय न्यायालय करता है। परन्तु न्यायालयों को, यह अधिकार नहीं है कि वह किसी कानून के विषय में यह निश्चय करे कि वह उचित है, या अनुचित।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

उत्तरी आयर्लैंड

उत्तरी आयर्लैंड से मतलब यहाँ आयर्लैंड के अलस्टर प्रान्त के उन छः जिलों से है, जिनका शासन-प्रबन्ध शेष (दक्षिण) आयर्लैंड से अलग है। यद्यपि अलस्टर प्रान्त में तीन जिले और भी हैं (जो दक्षिण आयर्लैंड में हैं), साधारण बोलचाल में उत्तरी आयर्लैंड को अलस्टर ही कह दिया जाता है। उत्तरी आयर्लैंड का क्षेत्रफल ३४ लाख एकड़, आबादी तेरह लाख, और राजधानी बेलफास्ट है।

पहले बताया जा चुका है कि सन् १९२० ई० में उत्तरी आयर्लैंड को अपने भीतरी शासन-प्रबन्ध के कुछ अधिकार दिए गए, और इसके लिए एक अलग पार्लिमेंट का संगठन किया गया, जो ब्रिटिश पार्लिमेंट के निरीक्षण और नियंत्रण में कुछ निर्धारित विषयों के कानून बनाने लगी। इंगलैंड, वेल्ज, और स्काटलैंड में कोई ऐसा हिस्सा नहीं है, जिसे उत्तरी आयर्लैंड की तरह अपना अलग शासन-प्रबन्ध करने और कानून बनाने का अधिकार हो। पहले की तरह अब भी यहाँ के तेरह प्रतिनिधि ग्रेट-ब्रिटेन की 'कामन्स'-सभा में भाग लेते हैं।

गवर्नर और प्रबन्धकारिणी सभा—उत्तरी आयर्लैंड का प्रधान शासक गवर्नर कहलाता है, वह बादशाह का प्रतिनिधि होता है और उसके द्वारा ही छः वर्ष के लिए नियुक्त होता है। वह प्रबन्ध-कारिणी सभा के परामर्श से शासन सम्बन्धी उन कार्यों को करता है, जो उत्तरी आयर्लैंड को सौंपे गए हैं। सन् १९२१ से प्रबन्धकारिणी

सभा में आठ मंत्री हैं, जो अपने शासन-कार्य के लिए यहाँकी 'कामन्स'-सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इन मंत्रियों में से प्रधान मंत्री को ३,२०० पौंड और अन्य मंत्रियों में से हरेक को २,००० पौंड वार्षिक वेतन दिया जाता है।

पार्लिमेंट—उत्तरी आयर्लैंड की पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं :—(१) सिनेट और, (२) कामन्स सभा। सिनेट में २६ सदस्य होते हैं; उनमें से दो 'एक्स-आफिशो' अर्थात् अपने पद के कारण सदस्य होते हैं। शेष चौबीस सदस्य निर्वाचित होते हैं; ये उत्तरी आयर्लैंड की कामन्स सभा द्वारा आठ वर्ष के लिए चुने जाते हैं; इनमें से बारह सदस्यों का निर्वाचन प्रति चौथे वर्ष होता है।

[राष्ट्रमंडल में यही एकमात्र दूसरी सभा है, जिसके सदस्य पहली (निचली) सभा द्वारा चुने जाते हैं।]

'कामन्स' सभा का कार्यकाल साधारणतया पांच वर्ष होता है। इसमें ५२ सदस्य होते हैं। उत्तरी आयर्लैंड की जनता को निर्वाचन का अधिकार वैसा ही है, जैसा इंगलैंड की जनता को है।

यहाँ लार्ड दोनों सभाओं के सदस्य हो सकते हैं, और उन्हें मताधिकार है। सन् १६२८ के कानून से स्त्रियों को मताधिकार पुरुषों के समान दिया गया, और सन् १६२६ में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रथा हटा कर 'प्रत्येक निर्वाचक संघ के लिए एक-एक सदस्य' की प्रणाली जारी की गई।

धन सम्बन्धी कानूनी मसविदों का विचार कामन्स सभा में ही आरम्भ हो सकता है, सिनेट को उन मसविदों में कोई परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होता। यदि कोई कानूनी मसविदा कामन्स सभा में मंजूर होकर, सिनेट द्वारा अस्वीकार हो जाय तो कामन्स सभा के दूसरे अधिवेशन में फिर स्वीकार होने पर वह 'पार्लिमेंट' की दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में उपस्थित किया जाता है, और बहुमत के निर्णय के अनुसार, गवर्नर के स्वीकार कर लेने पर, कानून बन

जाता है।

कानून बनाने का अधिकार--उत्तरी आयर्लैंड की पार्लिमेंट को अपने क्षेत्र के लिए कुछ विषयों को छोड़कर, दूसरे सब विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार है। जिन विषयों के लिए वह कानून नहीं बना सकता, वे ये हैं:- बादशाह, युद्ध, शान्ति तथा संधियाँ, जल सेना, स्थल सेना, वायु सेना, सम्मान-सूचक पद, राजद्रोह, विदेशी व्यापार, जहाज़ चलाना, समुद्र का तार, बे-तार का तार, वायुयान यात्रा, मुद्रा ढलाई और हुन्डी आदि, तोल और माप, व्यापार-चिन्ह (ट्रेड-मार्क), आयात-निर्यात कर, मादक द्रव्य कर, मुनाफे पर कर, आय कर, डाक विभाग, सेविंग बैंक, सरकारी दस्तावेज़ों की रजिस्टरी आदि। यह पार्लिमेंट कोई ऐसा भी कानून नहीं बना सकता, जिससे धार्मिक विषय में हस्तक्षेप होता हो, या जिससे किसी विशेष धर्म के अनुयाइयों का पक्षपात या उनपर सख्ती होती हो, या जिसके द्वारा किसी व्यक्ति या संस्था की जायदाद बिना मुआवज़े के ली जाय।

न्याय-कार्य--उत्तरी आयर्लैंड की सबसे बड़ी अदालत 'सुप्रीम कोर्ट' है; उसके दो भाग हैं:—हाईकोर्ट और अपील-कोर्ट। अपील कोर्ट के फ़ैसले की अन्तिम अपील इंगलैंड की लार्ड-सभा में होती है। यदि किसी क़ानूनी मसविदे के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठे कि उत्तरी आयर्लैंड की पार्लिमेंट को उसके बनाने का अधिकार है या नहीं, तो उसका अन्तिम निर्णय इंगलैंड की 'प्रिवी कौंसिल' की न्याय-समिति करती है।

इस परिच्छेद में इंगलैंड के पास के द्वीपों या टापुओं के शासन के सम्बन्ध में भी आवश्यक बातें दे दी जाती हैं।

खाड़ी के द्वीप—ये द्वीप 'इंगलिश चेनल' नाम की खाड़ी में फ्रांस के पश्चिमोत्तर किनारे पर हैं। पहले ये नार्मेंडी (फ्रांस) के ड्यूक के

अधिकार में थे, जो ग्यारहवीं सदी में इंगलैंड का बादशाह हुआ; तब से ये बराबर इंगलैंड के ही अधीन रहे हैं, यद्यपि नार्मंडी आदि पर इंगलैंड के बादशाह का अधिकार बहुत समय से हट गया है। इन द्वीपों की व्यवस्थापक सभाओं तथा न्यायालयों में प्रायः पुरानी फ्रांसीसी भाषा का प्रयोग होता है, और कानून का मुख्य आधार नारमंडी का पुराना कानून है। इनके शासन-प्रबन्ध में यहाँ के रिवाजों का बहुत ध्यान रखा जाता है। यहाँ की व्यवस्थापक सभाएँ स्थानीय उपयोग के कुछ कानून बना सकती हैं। ब्रिटिश पार्लिमेंट के कानून इन द्वीपों के निवासियों पर लागू नहीं होते, जब तक कि उन कानूनों में इन द्वीपों का साफ जिक्र न हो।

मानद्वीप—यह द्वीप इंगलैंड के पश्चिमोत्तर में, आयरिश समुद्र में, इंगलैंड और आयर्लैंड के बीच में है। इसका शासन-प्रबन्ध एक लेफ्टिनेंट-गवर्नर करता है, जो बादशाह द्वारा नियुक्त होता है, और अपने कार्य के लिए इंगलैंड के स्वदेश-विभाग के प्रति उत्तरदायी होता है। यहाँ स्थानीय कानून बनाने के लिए दो सभाएँ हैं। शासन यहाँ के रिवाज के अनुसार होता है। ब्रिटिश पार्लिमेंट जब इस द्वीप के लिए कोई कानून बनाती है तो उसमें इसका साफ जिक्र किया जाता है।

बारहवाँ परिच्छेद

स्थानीय शासन

हरेक देश में कुछ ऐसे कार्य होते हैं, जिन्हें केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार सुभीते से नहीं कर सकती, उन कार्यों को स्थानीय संस्थाओं से कराना अच्छा होता है। ये संस्थाएँ उन्हें स्थानीय परिस्थिति तथा आवश्यकताओं के अनुसार अच्छी तरह कर सकती हैं। स्थानीय बोर्ड या कमेटी अपने क्षेत्र के महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय करती और

साधारण नीति ठहराती हैं। ब्योरेवार बातों का प्रबन्ध करने के लिए भिन्न-भिन्न उपसमितियों को विविध विषय सौंपे जाते हैं। ये उपसमितियां बोर्ड या कमेटी की देखरेख में अपना कार्य करती हैं। बोर्ड, कमेटी तथा उपसमितियों के निर्णयों को अमल में लाने के लिए हरेक स्थान में कुछ स्थायी कर्मचारी रहते हैं।

स्थानीय संस्थाएँ—ब्रिटिश संयुक्तराज्य की स्थानीय संस्थाएँ यहाँ की अन्य संस्थाओं की तरह समय और स्थान के अनुसार जुदा-जुदा ढङ्ग से बढ़ी हैं। ये संस्थाएँ पुरानी हैं, और किसी खास विधान द्वारा बनाई हुई नहीं हैं। इनकी वर्तमान व्यवस्था पिछले सौ वर्ष से आरम्भ हुई है। सन् १८३५ के म्युनिसिपल कारपोरेशन एक्ट और १८८८ और १८९४ के लोकल-गवमेंट एक्ट से जुदा-जुदा हिस्सों के स्थानीय प्रबन्ध में कुछ समानता कर दी गई है। अब इंगलैंड, वेल्ज, स्काटलैंड और उत्तरी आयर्लैंड में से हरेक कुछ काउंटियों तथा काउँटी बरों में बटा हुआ है। जिस बड़े शहर की जनसंख्या ७५ हजार या इससे अधिक होती है, उसे काउँटी बेरो कहते हैं। हरेक काउन्टी के स्थानीय कार्य के लिए एक काउन्टी कौंसिल होती है। हरेक काउन्टी ग्राम-ज़िलों, नगर-जिलों तथा म्युनिसिपल बरों में बँटी होती है। हरेक-नगर नगर-ज़िले तथा ग्राम-जिले में जिला-कौंसिल है, और म्युनिसिपल बरों में म्युनिसिपल कौंसिल। नगर-जिले और ग्राम-जिले पैरिशों में बंटे हुए हैं। पेरिश एक बड़ा ग्राम या कुछ ग्रामों का समूह होता है। पेरिशों में पेरिश-कौंसिल होती है। स्थानीय संस्थाओं के सब सदस्य अवैतनिक होते हैं।

काउन्टी कौंसिल—काउन्टी कौंसिल में सभापति, एलडरमेन और साधारण सदस्य (कौंसिलर) होते हैं। काउन्टी में प्रत्येक ज़िले से एक या अधिक साधारण सदस्य हर तीसरे वर्ष चुने जाते हैं। एलडर-मेन साधारण सदस्यों द्वारा छः वर्ष के लिए चुने जाते हैं। परन्तु आधे एलडरमेनों का चुनाव तीसरे वर्ष हो जाता है। कुल एलडरमेनों की

संख्या साधारण सदस्यों की एक-तिहाई होती है। साधारण सदस्यों की संख्या काउँटी के आकार पर निर्भर है। सभापति कौंसिल द्वारा चुना जाता है। निर्वाचन अधिकार उन सब बालिग़ पुरुषों तथा स्त्रियों को है, जो निर्वाचन के समय छः महीने तक काउन्टी में रह चुके हों।

काउन्टी-कौंसिल के कार्य अनेक हैं, उनका ब्योरेवार वर्णन करना बहुत कठिन है। कार्यों के मुख्य भेद ये हैं :—(१) शिक्षा, (२) सार्वजनिक स्वास्थ्य, (३) सड़कों का निर्माण, (४) पुलिस, (५) जनता की सहायता, बेकारों की आजीविका और बूढ़ों को पेन्शन, (६) गृह-निर्माण, और (७) म्युनिसिपल (स्थानीय) व्यापार। यह कौंसिल जिला-कौंसिलों के कार्य का निरीक्षण करने के अलावा बड़ी सड़कों और पुलों की मरम्मत करवाती है; किसानों को छोटे-छोटे खेत दिलाने का प्रबन्ध करती है; काउन्टी-पुलिस का नियन्त्रण करती है; दाई के काम (नर्सिंग) और बच्चों की सुरक्षा सम्बन्धी नियमों का पालन करती है। यह काउन्टी में प्रारम्भिक शिक्षा की उत्तरदायी है, और उच्च शिक्षा के लिए सहायता देती है। यह अस्पताल रिफॉर्मेटरी (छोटी उम्र के अपराधियों के सुधार-गृह) और पागलखानों का प्रबन्ध तथा निरीक्षण करती है; और नाचघर और थियेटरों आदि का लाइसेंस भी देती है।

काउन्टी कौंसिल निम्नलिखित विषयों के कानून को अमल में लाती है:—पशुओं की छूत की बीमारी, जङ्गली पशु, तोल माप, स्फोटक पदार्थ, नदियों की गन्दगी आदि। यह अपने कर्मचारियों को खुद ही नियत करती है। यह अपनी काउन्टी की सुव्यवस्था के लिए आवश्यक उपनियम बनाती है और उन्हें भंग करनेवालों पर जुर्माना कर सकती है। यह एक निर्धारित सीमा तक कर काउन्टी-रेंट भी लगा सकती है। परन्तु इसकी आय का मुख्य साधन वह रकम है, जो इंगलैंड की सरकार द्वारा इसे खास-खास कामों के लिए मिलती है। कौंसिल का हिसाब एक आय-व्यय निरीक्षक जाँचता है, जिसे स्वास्थ्य-मन्त्री नियत

करता है ।

जिला-कौंसिल--हरेक जिला-कौंसिल के सदस्य तीन साल के लिए चुने जाते हैं, परन्तु एक तिहाई सदस्यों का चुनाव हर साल होता है। जो सदस्य छः महीने तक, बिना किसी विशेष कारण, कौंसिल की मीटिंग में गैरहाजिर रहता है, उसकी जगह खाली हो जाती है। सभापति सदस्यों द्वारा चुना जाता है। स्वास्थ्य-विभाग के इन्सपेक्टर कौंसिल की मीटिंग में, निमन्त्रित किये जाने पर, भाषण दे सकते हैं।

जिला कौंसिल के मुख्य कार्य ये हैं:—यह जिले की गलियों, बाजारों और नालियों की सफाई कराती है, सड़कों पर पानी छिड़कवाती है, मकानों का मैला और कूड़ा हटवाती है, साफ पानी का प्रबन्ध करती है, खाने-पीने की खराब चीजों को फिंकवाती है। यह प्रधान सड़कों को छोड़कर दूसरी सड़कें बनवाती है तथा उनकी मरम्मत करवाती है। छूत की बीमारियों को रोकने के लिए इसे विशेष अधिकार हैं। यह गाड़ियों, सरायों, और जचाखाने आदि का लाइसेंस देती है। यह मेलों का प्रबन्ध करती तथा कारखानों आदि का समय ठहराती है।

नगर जिला-कौंसिलों के विशेष काम ये हैं:—ये स्नानागार (नहाने की जगह) और कपड़े धोने की जगहों का प्रबन्ध करती हैं; कहीं आग लगे तो उसे बुझाने के लिए पानी का इन्तजाम करना, इनका आवश्यक कर्तव्य है। ये कसाईखाने बनवाती हैं और ट्रामवे तथा छोटी लाइन की रेलें चलाती हैं। ये पुस्तकालय, अजायबघर, सार्वजनिक उद्यान (पबलिक पार्क) आदि भी बनवाती हैं।

जिला-कौंसिल की कुछ आमदनी फीस और जुर्माने से हो जाती है, और उनकी शेष आय वह रकम है, जो ब्रिटिश सरकार से उन्हें काउन्टी कौंसिल द्वारा मिलती है। नगर जिला कौंसिलों को निर्धारित कर वसूल करने का अधिकार है। ग्राम-जिला-कौंसिलों का खर्च उस फण्ड से चलता है, जो जुदा-जुदा पेरिशों से वसूल किए हुए 'दरिद्र-रक्षा कर' (पुअर रेट) के इकट्ठा होने से बनता है।

म्युनिसिपल कौंसिल—म्युनिसिपल कौंसिलें उन बड़े-बड़े शहरों में होती हैं, जो काउन्टी कौंसिलों के अधिकार में नहीं हैं। इनमें मेयर, एलडरमेन, और साधारण सदस्य होते हैं। साधारण सदस्य तीन वर्ष के लिए चुने जाते हैं, परन्तु एक-तिहाई सदस्यों का चुनाव हर साल, सितम्बर की पहली तारीख को होता है। म्युनिसिपल कौंसिलों के निर्वाचकों की योग्यता वही होती है, जो काउन्टी कौंसिल के निर्वाचकों की। 'एलडरमेन' साधारण सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। उनकी संख्या, साधारण सदस्यों की संख्या की एक-तिहाई रहती है। ये छः साल के लिए चुने जाते हैं, पर आधे एलडरमेनों का चुनाव हर तीसरे साल होता है। मेयर, कौंसिल द्वारा एक साल के लिए चुना जाता है; उसका अगले साल भी निर्वाचन हो सकता है। वह कौंसिलों का सभापति होता है। वह 'म्युनिसिपल बरो' की ओर से मेहमानदारी या अतिथि-सत्कार का कार्य करता है। वह कौंसिल की सब कमेटियों का सदस्य, और 'बरो' की न्यायाधीश-समिति का सभापति होता है। यदि बिना विशेष कारण के, मेयर दो महीने तक, और 'एलडरमेन' या साधारण सदस्य छः महीने तक, अपने 'बरो' से गैरहाजिर रहें तो उनका स्थान खाली हो जाता है।

कौंसिल, 'बरो' के लिए उपनियम बना सकती है। यह उसकी जायदाद का प्रबन्ध करती है। जिन बरों में दस हजार से अधिक जन-संख्या है, वे प्रारम्भिक शिक्षा के लिए उत्तरदायी होती हैं। ये जानवरों की छूत की बीमारियों के तोल तथा माप, और खाद्य पदार्थों की बिक्री के कानूनों को अमल में लाती हैं। जिन 'बरो' की जनसंख्या बीस हज़ार से अधिक है, वे पुलिस का भी प्रबन्ध कर सकती हैं।

'बरो' की आय के साधन ये हैं :—स्थानीय फ़ीस, जायदाद की आमदनी, विशेष कार्यों के लिए ब्रिटिश सरकार से मिलने वाली धन और 'बरो' के कर।

पेरिश-कौंसिल—पेरिश-कौंसिल में सभापति, और ५ से १५ तक

सदस्य रहते हैं। ये तीन साल के लिए, १५ अप्रेल को चुने जाते हैं। यदि बिना विशेष कारण कौंसिल का सदस्य, उसकी बैठक से, छः महीने से अधिक समय तक गैरहाजिर रहे तो उसका स्थान खाली हो जाता है। पेरिश-कौंसिल जन्म-मृत्यु तथा विवाह-शादियों का लेखा रखता है, और किसानों को भूमि दिलाने का प्रबन्ध करती है। यह नीचे लिखे कार्य भी कर सकता है :—गाँव में रोशनी; पहरा देना और स्मशान, स्नानागार, एञ्जिन से आग बुझाने, मनोरंजन या दिलबहलाव आदि का प्रबन्ध करना।

गरीबों और अपाहिजों को सहायता पहुँचाने के लिए कुछ पेरिशों की यूनियन या समिति स्थापित की गयीं हैं। 'बरों' में भी ऐसी समितियों की स्थापना हुई है। समिति की एक संस्था संरक्षक बोर्ड (बोर्ड-आफ-गार्डियन्स) है। उसका प्रधान कार्य दरिद्र लोगों को भोजन-वस्त्र देना तथा चिकित्सा सम्बन्धी सहायता पहुँचाना और मुर्दों के गाड़ने का प्रबन्ध करना है यह दरिद्रों की आजीविका के लिए काम की सुव्यवस्था करता है; दरिद्रालयों और अपाहिजखानों का प्रबन्ध करता है। बोर्ड की आय का मुख्य साधन दरिद्र-रक्षा-कर है।

लन्दन का स्थानीय शासन—इङ्गलैंड की राजधानी लन्दन है। उसकी कुल जनसंख्या ८७ लाख है; यह संसार भर के किसी भी राज्य की राजधानी की जनसंख्या से अधिक है। यहाँ के स्थानीय शासन की एक अलग ही व्यवस्था है। इसका स्थानीय शासन खासकर दो संस्थाओं द्वारा होता है :—(१) लन्दन कारपोरेशन, और (२) लन्दन काउन्टी-कौंसिल। लन्दन कारपोरेशन का कार्यक्षेत्र प्राचीन लन्दन शहर है; और, लन्दन काउन्टी-कौंसिल का कार्यक्षेत्र है, उसके बाहर, नया बसा हुआ लन्दन शहर। लन्दन कारपोरेशन का कार्य लार्ड मेयर, एलडरमेन, और साधारण सदस्यों द्वारा होता है। लंदन काउन्टी कौंसिल नये लन्दन शहर की सब (अट्ठाईस) काउन्टी-कौंसिलों के ऊपर है। इसका संगठन तथा अधिकार इंगलैंड की दूसरी

१०

काउन्टी कौंसिलों जैसे हैं। इसे लन्दन कारपोरेशन के सम्बन्ध में भी कुछ अधिकार है।

स्थानीय संस्थाएँ और केन्द्रीय सरकार—उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में यहाँ स्थानीय संस्थाओं पर केन्द्रीय सरकार का निरीक्षण और नियन्त्रण करने का अधिकार क्रमशः बढ़ा है। अब (१) नीचे लिखे विभाग व्यापक रूप से उनका निरीक्षण करते हैं—स्वास्थ्य-मंत्री, शिक्षा-बोर्ड, व्यापार बोर्ड, यातायात-मंत्री, गृह-कार्यालय (होम-आफिस) और बिजली कमिश्नर। प्रत्येक विभाग के अधिकारी का अपने-अपने विषय संबन्धी अधिकार है मिसाल के तौर पर स्वास्थ्य मंत्री स्थानीय संस्थाओं के स्वास्थ्य-कार्य का निरीक्षण करता है। (२) कुछ विषयों में केन्द्रीय मन्त्री ऐसे नियम बना देते हैं, जो स्थानीय संस्थाओं को पालन करने होते हैं। (३) आमतौर से स्थानीय संस्थाओं को ऋण तभी मिलता है, जब केन्द्रीय विभाग उसकी मंजूरी देदे। (४) विशेष कार्यों के लिए केन्द्रीय सरकार की सहायता उसी दशा में मिलती है, जब वह कार्य सन्तोषजनक रीति से किया जाय। (५) स्थानीय संस्थाओं के हिसाब की जाँच जिले के लेखा-परीक्षक (आडीटर) करते हैं, जिनकी नियुक्ति स्वास्थ्य-मंत्री द्वारा होती है। (६) जनता स्थानीय अधिकारियों के सम्बन्ध में केन्द्रीय विभागों से शिकायत कर सकती है; इस पर उसकी जाँच होकर आवश्यक कार्यवाही की जाती है।

केन्द्रीय सरकार केवल निरीक्षण या नियन्त्रण करती है, वास्तविक कार्य-सम्पादन तो स्थानीय संस्थाओं द्वारा ही होता है, जो जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों की होती है। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त स्थायी कर्मचारी किसी कार्य को स्वयं नहीं करते। इस प्रकार यहाँ अधिकारों का केन्द्रीकरण नहीं है, स्थानीय संस्थाएँ अपने क्षेत्र में स्वतंत्रता का उपयोग करती हैं, और ब्रिटिश जनता की विविध क्षेत्रों में स्वाधीनता बढ़ाने में सहायक होती हैं

दूसरा खंड

राष्ट्रमंडल के अन्य भाग

तेरहवाँ परिच्छेद

ब्रिटिश साम्राज्य

राष्ट्रमंडल और ब्रिटिश साम्राज्य—राष्ट्रमंडल वही संस्था है जिसे पहले ब्रिटिश साम्राज्य कहा जाता था। पीछे साम्राज्य शब्द में दूसरे देशों का शोषण करने और उन्हें पराधीन बनाने की भावना व्यक्त होने लगी। इसलिए ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने सन् १९२६ की साम्राज्य-परिषद् के निश्चयों में तथा १९३१ के 'वेस्टमिंस्टर कानून' में, जिसका अगले अध्याय में वर्णन किया जायगा, ब्रिटिश साम्राज्य का उल्लेख समानता-सूचक 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' अर्थात् ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नाम से किया। उस समय उसके सदस्य ये माने गए थे—कैनेडा, दक्षिण अफ्रीका का यूनियन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, न्यूफाउंडलैंड और आयर (उत्तरी भाग छोड़कर शेष आयर्लैंड)। ये सब स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश थे। इनमें से पहले पांच तो इंगलैंड के उपनिवेश ही थे। इन सब के निवासियों का अंगरेजों से नजदीक का सम्बन्ध था और ये इंगलैंड के बादशाह को अपना बादशाह मानने में गर्व करते थे।

सन् १९४७ में बर्मा स्वाधीन हुआ। पर वह स्वाधीन होने के साथ ही ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से पृथक् हो गया। इधर भारत, पाकिस्तान और

सीलोन ने स्वाधीनता प्राप्त की। इन एशियाई राज्यों का जाति और वर्ण में अंगरेजों से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था। पर इंगलैंड इन्हें अपने संगठन में रखने को उत्सुक था। इसलिए अक्तूबर १६४८ में राष्ट्रमंडल के राज्यों के प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि 'ब्रिटिश राष्ट्रमंडल' में से 'ब्रिटिश' शब्द निकाल दिया जाय, इसे केवल राष्ट्रमंडल कहा जाया करे। इस विषय की व्योरेवार बातें आगे लिखी जायंगी। यहाँ खास बात यह कहनी है कि जिसे अब राष्ट्रमंडल कहा जाता है, वह पहले ब्रिटिश राष्ट्रमंडल और उससे भी पहले ब्रिटिश साम्राज्य कहा जाता था। इसलिए इस संस्था का पहले का परिचय प्राप्त करने के लिए हमें 'ब्रिटिश साम्राज्य' का विचार करना होगा।

ब्रिटिश साम्राज्य की विशालता—इस भूमंडल में, समय-समय पर कितने ही साम्राज्य हुए हैं। अब भी कई साम्राज्य मौजूद हैं। उनके विविध गुण-दोषों का विचार न करके, हमें यहाँ केवल यही कहना है कि नया नाम ग्रहण करने तक, जनसंख्या और विस्तार के विचार से, ब्रिटिश साम्राज्य सब से बढ़ा-चढ़ा रहा है। इसके सब भागों का कुल क्षेत्रफल १३४ लाख वर्ग मील, और जनसंख्या, लगभग ५० करोड़ थी। यह क्षेत्रफल और जनसंख्या, संसार के स्थल भाग के क्षेत्रफल, और कुल जनसंख्या के चौथाई-चौथाई के लगभग था। इस साम्राज्य की ५० करोड़ जनसंख्या में से करीब पांच करोड़ तो ब्रिटिश संयुक्त-राज्य में ही थी। शेष पैंतालीस करोड़ में से लगभग ३६ करोड़ जनता अकेले भारतवर्ष की (विभाजन से पूर्व) थी। इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य की विशालता का मुख्य आधार भारतवर्ष ही रहा है।

ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण कैसे हुआ ?—साम्राज्य-स्थापना के विचार से इंगलैंड की स्थूल रूप से तीन हालतें रही हैं:—(१) सोलहवीं सदी में कुछ देशों का पता लगाया गया। (२) सतरहवीं सदी में कुछ उपनिवेश बसाए गए, (३) पीछे विजय और

कूटनीति से, और चतुराई या होशयारी से अनेक प्रदेशों पर अधिकार किया गया।

संसार के जो हिस्से इस साम्राज्य में शामिल हुए हैं, उनमें से एक भारतवर्ष को छोड़कर शेष या तो वीरान थे, या वहाँ ऐसे आदमी रहते थे, जिन बेचारों के पास 'सभ्य' मनुष्यों से लड़ने के साधन या इच्छा न थी। योरपियनों की जो टोली जहाँ पहुँच गई, उसने वहां अधिकार कर लिया। पंद्रहवीं सदी के अन्त में योरपीय देशों के साहसी यात्री नए-नए ऐसे देशों की खोज में निकले, जो उन्हें मालूम न थे। स्पेन पुर्तगाल इस कार्य में सबसे आगे थे। फ्रांस और हालैंड भी इंगलैंड से पहले कार्यक्षेत्र में आगए थे। इसलिए अँगरेजों की इन्हीं देशों के आदमियों से मुठभेड़ हुई, नए प्रदेशों के मूल निवासियों से नहीं। दूसरे योरपियन, आरम्भ में अँगरेजों की अपेक्षा बलवान थे, तो भी वे हार गए। इसका एक कारण यह हुआ कि उन्हें लड़ाई के लिए अपने-अपने देशों से जन-धन का इन्तजाम करना पड़ता था, इसके खिलाफ, अँगरेज उस समय के धार्मिक अत्याचार आदि के कारण नए प्रदेशों में ही जाकर बस गए थे। इसके अलावा दूसरे योरपियन देशों की शक्ति घटी हुई थी। वे योरप में दबदबा जमाने के लिए आपस में लड़ते रहते थे, और विदेशों में भी पैर जमाना चाहते थे। आपस की होड़ के कारण इनकी शक्ति बहुत घट चुकी थी। इसलिए इंगलैंड को इन पर विजय पाने में विशेष असुविधा न हुई। स्पेनवालों ने सोलहवीं सदी के अन्त (सन् १५८८ ई०) में इंगलैंड पर आक्रमण किया, परन्तु उस समय खाड़ी में भयंकर तूफान आजाने से उसका 'अरमाडा' नाम का विशाल बेड़ा नष्ट हो गया और इंगलैंड की, दूसरे देशों पर धाक जम गई। फिर इसने दूसरों के द्वारा खोज किए हुए, और दूसरों के साफ किए हुए नए देशों पर धीरे-धीरे अधिकार करने की ठानी, और ऊपर बताए हुए कारणों से यह इसमें सफल हो गया। इस तरह ब्रिटेन की साम्राज्य-पताका अमरीका, अफ्रीका, और आस्ट्रेलिया आदि के विविध भागों

तथा बहुत से टापुओं पर फहराने लगी।

यह तो साम्राज्य के उन भागों की बात हुई, जो वीरान थे, जिनके निवासी असभ्य थे। भारतवर्ष ऐसा नहीं था। अँगरेज यहाँ इसे जीतने के इरादे से नहीं आए थे। यहाँ आने का उनका मुख्य प्रकट या ज़ाहिरा उद्देश्य व्यापार करना था, और वे नम्र व्यापारी के रूप में ही यहाँ आए। धीरे-धीरे अपनी कोठियों की रक्षा के लिए ये सैनिक प्रबन्ध करने लगे। उन दिनों यहाँ पुर्तगाल, हालैंड और फ्रांस वाले भी अड्डा जमाने की कोशिश में थे; उनकी अँगरेजों से ईर्षा और होड़ होनी स्वाभाविक थी। विदेशी ताकतों के आपस में घोर युद्ध हुए, जिनमें अज्ञान अथवा फूट के कारण भारतवासियों ने भी भाग लिया। अन्त में विजय अँगरेजों की रही, और इन्होंने सन् १८५७ तक छल-बल या कौशल से भारत के बहुत से हिस्से पर प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से अपना अधिकार जमा लिया। याद रहे कि योरपियनों ने अकसर चालाकियों, युक्तियों और षड्यंत्रों से काम लिया, और कुछ खास दशाओं में ही तलवार का उपयोग किया। फिर, योरपियन सैनिकों की संख्या भी उस समय यहाँ बहुत कम थी। अँगरेजों ने ज्यादहतर यहाँ के ही एक देशी राज्य के राजा या सरदारों को धन या पद का लालच देकर उनके बल पर दूसरे राज्य को, और कभी-कभी उसी राज्य को 'विजय' किया। इस प्रकार उन्होंने अधिकांश में भारतवासियों की ही सहायता से, उनकी तलवार से, इस देश में अपना साम्राज्य स्थापित किया।

साम्राज्य-निर्माण के कारण—ब्रिटिश साम्राज्य के बनने में नीचे लिखी बातें सहायक हुईं :—

(क) इंगलैंड की भौगोलिक स्थिति, जिसका वर्णन इस पुस्तक के पहले अध्याय में किया जा चुका है, इस कार्य के लिए अनुकूल थी। देश छोटा तथा चारों तरफ समुद्र से घिरा होने के कारण अच्छी तरह सुरक्षित भी था। फिर यहाँ जीवन-निर्वाह की कठिनाइयों से लाचार

होकर, अँगरेजों को बाहर जाने-आने और विघ्न-बाधाओं का सामना करने की आदत डालनी पड़ी इससे इन्हें उपनिवेश बसाने में सुविधा मिली।

(ख) इंगलैंड की सोलहवीं सतरहवीं सदी की धार्मिक असहिष्णुता ने भी अँगरेजों को साम्राज्य-निर्माण में बहुत सहायता दी। जिन लोगों को धार्मिक अत्याचार न सह सकने के कारण स्वदेश में रहना कठिन हो गया; वे जहाज़ों पर चढ़कर इधर-उधर निकल पड़े और तरह-तरह की मुसीबतों का सामना करके संसार के बहुत से हिस्सों में पहुँच गए।

(ग) अँगरेज पादरियों का भी साम्राज्य-निर्माण में बड़ा भाग है। अपने राज्य या देश-भाइयों की सहायता पाकर, ये अपने धर्म और अपनी सभ्यता का प्रचार करने के लिए, दूर देशों में गए। धीरे-धीरे इन्होंने उनके निवासियों को ईसाई बनाया। जब-जब इन नए ईसाइयों तथा पुराने धर्म वालों का विरोध हुआ और अशान्ति मची तो इन्होंने उसके खूब बढ़े-चढ़े समाचार भेजकर अपने देशवालों की तथा अपने धर्मवाले दूसरे लोगों की सहानुभूति प्राप्त की, और अन्त में सैनिक शक्ति से रौब जमाकर अँगरेजों ने नए देश में कुछ-न-कुछ अधिकार पा लिया।

[श्री० डाक्टर वी० शिवराम ने अपनी पुस्तक (कम्पेरेटिव कालोनियल पालिसी) में लिखा है कि केवल मिशनरियों के ही कार्य से ब्रिटिश साम्राज्य ने आस्ट्रेलिया, फिजी, दक्षिण और मध्य अफ्रीका, मीरालोयन, बर्मा और गायना आदि महत्वपूर्ण उपनिवेशों में अपनी जड़ जमायी। इन तमाम स्थानों में व्यापारिक सम्बन्ध या राजनैतिक नियन्त्रण होने से बहुत पहले मिशनरियों के अड्डे बन गये थे।]

(घ) नेपोलियन ने कहा था कि अँगरेज जाति दुकानदारों की जाति है। अंगरेजों के व्यापार-कौशल ने भी इनका साम्राज्य बढ़ाने में बड़ा सहारा लगाया है। भारतवर्ष आदि अनेक देशों में पहले-पहल

व्यापार के नाते ही अंगरेजों ने अपने पैर जमाए थे।

(च) अँगरेजों की महाजनी प्रकृति भी साम्राज्य-विस्तार में सहायक हुई है। संयुक्त-राज्य अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति विलसन का यह कथन ठीक ही है कि पूँजी की चालें विजय की चालें हैं। जिस निर्बल देश ने अँगरेजों से रुपया उधार लिया, वह पीछे जाकर इनके प्रभाव में आ गया; इन्हें वहाँ व्यापार आदि की विशेष सुविधाएँ मिल गयीं। अपनी रक्षा के लिए इन्होंने वहाँ अपनी सेना रख ली, और एक-एक मंजिल तय करके, बहुधा ऋण की जमानत में देश का एक भाग गिरवी रखकर, इन्होंने सारे देश में अपना रौब जमा लिया फ़ारिस, चीन मिश्र आदि में कुछ-कुछ इसी तरह अंगरेजों का दखल हुआ।

जो हो, अँगरेज कई कारणों से बाहर गये, उन देशों की हालत देखी भाली। जहाँ जैसा मौका मिला उससे लाभ उठाया और साम्राज्य कायम किया। जुदा-जुदा देशों का कुछ खास विचार आगे प्रसंग आने पर किया जायगा।

साम्राज्य में रहनेवाली जातियाँ—मोटे तौर से साम्राज्य के सब हिस्से दो श्रेणियों में बांटे जा सकते थे। एक श्रेणी में वे भाग थे, जिनमें खुद अँगरेजों की, या दूसरी योरपीय जातियों के आदमियों की संख्या अथवा प्रभुता विशेष थी। इनमें सभ्यता, विज्ञान, नीति, आदि की विशेष उन्नति थी। इन्हें स्वराज्य के लगभग पूरे अधिकार थे। दूसरी श्रेणी में वे भाग थे, जिनके निवासी गैर-योरपियन जातियों के थे; इनमें विविध प्रकार की उन्नति बहुत कम थी, ये आधुनिक सभ्यता में पिछड़े हुए माने जाते थे, या इनमें आपसी मतभेद था और संगठन की कमी थी। ये भाग ज्यादहतर परतंत्र थे। इन गैर-योरपियन या अनगोरी जातियों की पराधीनता के कारण ही छोटे से ब्रिटिश टापू का इतना बड़ा साम्राज्य बना हुआ था। अब हम यह विचार करते हैं कि राजनैतिक दृष्टि से इस साम्राज्य के कितने भाग थे।

साम्राज्य के राजनैतिक भाग—ब्रिटिश साम्राज्य का संगठन बहुत पेचीदा रहा है। प्रथम योरपीय महायुद्ध के बाद ब्रिटिश संयुक्त-राज्य को छोड़ कर, बाकी साम्राज्य के मुख्य राजनैतिक भाग ये थे :—

(१) डोमिनियन या स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश। इनमें (क) केनेडा, (ख) दक्षिण अफ्रीका का यूनियन, (ग) आस्ट्रेलिया, (घ) न्यूजीलैंड, (च) न्यूफाउंडलैंड और (छ) आयरिश-फ्री स्टेट (दक्षिण आयर्लैंड) थे। इनके दो भाग किए जा सकते थे :—(अ) जो उपनिवेश थे, और (आ) जो उपनिवेश नहीं थे। ऊपर जो छः डोमिनियन बतलाई गयी हैं, उनमें से प्रथम पाँच तो (स्वराज्य-प्राप्त) उपनिवेश ही थे, केवल आयरिश फ्री स्टेट ही ऐसा था, जो उपनिवेश नहीं था।

[इन प्रदेशों के पद या स्थिति के लिए अँगरेजी शब्द 'डोमिनियन स्टेटस' है। और, क्योंकि इन्होंने अपने भीतर तथा बाहरी सब विषयों में करीब-करीब पूरा स्वराज्य पा लिया था, 'डोमिनियन स्टेटस' का अर्थ व्यवहार में साम्राज्यान्तर्गत (साम्राज्य के अन्दर) स्वराज्य हो गया। कुछ लेखक 'डोमिनियन स्टेटस' के लिए 'औपनिवेशिक स्वराज्य' शब्द का प्रयोग करते हैं।]

(२) भारतवर्ष।

(३) उपनिवेश-विभाग के अधीन प्रदेश। इनमें से ज्यादहतर उपनिवेश थे। इनकी संख्या बहुत बड़ी थी। इनमें से कुछ में उत्तरदायी शासन आरम्भ किया गया था। मिसाल के तौर पर सीलोन (लङ्का)।

(४) रक्षित राज्य (प्रोटेक्टेड स्टेटस)। इनमें प्रभुत्व तो अपने-अपने राज्य का था, परन्तु ब्रिटिश सरकार को बाहरी विषयों में अथवा बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के विषयों में, कुछ राजनैतिक अधिकार था; उदाहरण के लिये, सुडान।

[संरक्षक राज्य को अपने रक्षित राज्य में कुछ अधिकार सहज हो

मिल जाते हैं इस लिए अकसर बलवान राज्यों को यह इच्छा रहती है कि अधिक-से-अधिक देश हमारी संरक्षता स्वीकार करलें। वे इस बात का प्रयत्न करते रहते हैं कि अवसर मिलते ही, वे उन राज्यों को अपनी संरक्षता में ले आवें, जो उनसे कमजोर होने पर भी उनके अधीन न हों। रक्षित राज्य से कोई दूसरा राज्य सीधा राजनैतिक सम्बन्ध नहीं कर सकता; यदि कोई राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित होता है तो संरक्षक राज्य द्वारा ही हो सकता है। रक्षित राज्य बनने से अकसर उस राज्य का, अधीन राज्य बन जाने का रास्ता खुल जाता है।]

चौदहवाँ परिच्छेद

ब्रिटिश साम्राज्य से ब्रिटिश राष्ट्रमंडल

पहले कहा गया है कि राष्ट्रमण्डल ब्रिटिश साम्राज्य का ही नया नाम और रूप है। ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण के विषय में पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है। इस परिच्छेद में यह विचार किया जायगा कि ब्रिटिश साम्राज्य क्यों किन अवस्थाओं में राष्ट्रमण्डल बना। पहले यह जान लेना चाहिये कि ब्रिटिश साम्राज्य में जो प्रदेश स्वाधीन हुए हैं, उन्हें स्वाधीनता किस प्रकार प्राप्त हुई है। क्या इङ्गलैंड के सूत्रधार आरम्भ से ही इतने उदार थे कि वे अपने साम्राज्य के प्रत्येक अंग को स्वराज्य प्रदान करते गए; यदि नहीं तो उन्हें ऐसा करने की प्रेरणा कब से और क्यों हुई।

अमरीका का सवाल—इंगलैंड की उपनिवेश-नीति में अमरीका के संयुक्त-राज्यों का प्रश्न प्रमुख है। इन्हें संक्षेप में अमरीका कहा जाता है। सन् १७७६ से पहले यह प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्य का ही अंग था। इस वर्ष यहाँ के उपनिवेशों में इंगलैंड के दमन-पूर्ण शासन से असन्तोष इतना बढ़ गया कि आखिर उन्हें इंगलैंड के विरुद्ध अस्त्र उठाने पड़े और युद्ध करके स्वाधीनता प्राप्त करनी पड़ी। इसकी कथा संक्षेप में

इस प्रकार है।

सतरहवीं सदी में बहुत से अंगरेज धार्मिक और राजनैतिक झगड़ों के कारण इंगलैंड को छोड़ कर अमरीका में जा बसे। ये स्वाधीनता प्रेमी थे। इंगलैंड से बहुत दूर होने के कारण तथा उस समय यातायात की सुविधाएँ भी न होने से इन पर इंगलैंड का कोई कड़ा नियंत्रण नहीं चल सकता था। किन्तु इंगलैंड अपने उपनिवेशों से अधिक-से-अधिक लाभ उठाना चाहता था। उसने अपने व्यपार की उन्नति के लिए ऐसे कानून बनाए जो उपनिवेशों के वास्ते हानिकर तथा उनकी स्वाधीनता में बाधक थे। इस पर अमरीकावासियों में बहुत असन्तोष फैला, पर इंगलैंड ने उस ओर ध्यान न दिया। इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी युद्ध के बाद उसने अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए एक टिकट-कानून (स्टाम्प ऐक्ट) बनाया, जिसका आशय यह था कि अमरीका वाले अपने दस्तावेजों, तिजारती हुंडियों, बिलों, रसीदों और अखबारों आदि पर इंगलैंड का बना टिकट खरीद कर लगावें। इससे खासकर सौदागरों, वकीलों तथा पत्र-प्रकाशकों की हानि स्पष्ट थी। उपनिवेशों ने इस पर विद्रोही भावना प्रगट की; आखिर, ब्रिटिश पर्लिमेंट को यह कानून रद्द करना पड़ा, पर वह उपनिवेशों पर टैक्स लगाने के अधिकार पर दृढ़ रही। सन् १७६७ में उसने अमरीका जानेवाली चाय, कागज और काँच के सामान आदि पर कर लगा दिया। अमरीका वालों का सिद्धान्त था 'बिना प्रतिनिधित्व, कर नहीं' अर्थात् जब कि ब्रिटिश पार्लिमेंट में हमारे प्रतिनिधि नहीं, तो उसे हम पर किसी प्रकार का कोई कर लगाने का अधिकार नहीं। अपने मौखिक विरोध का कुछ फल न होते देख उन्होंने विदेशी (अँगरेजी) वस्तु बहिष्कार, और स्वदेशी उद्योगों की उन्नति करने की नीति अपनाई। उन्होंने चाय पीना छोड़ दिया, और जब इंगलैंड से चाय के कुछ जहाज वहाँ पहुँचे तो चाय के सन्दूकों को समुद्र में फेंक दिया। अपनी प्रभुता का खुल्लमखुल्ला विरोध होते देख ब्रिटिश सरकार बदला लेने पर उतर आई।

इसके जवाब में उपनिवेशों ने सन् १७७६ में स्वाधीनता की घोषणा कर दी।

स्वाधीनता की घोषणा—अमरीका की स्वाधीनता की घोषणा का प्रस्ताव सविस्तर है। शुरू में कहा गया कि "कभी-कभी मानवीय घटनाओं के परिणाम-स्वरूप यह अनिवार्य हो जाता है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से संयुक्त करने वाले राजनीतिक सूत्रों को तोड़ दे, और संसार के अन्य अधिकारों के साथ, वह पृथक् और समान स्थिति प्राप्त करे जिसे पाने का स्वाभाविक अधिकार उसे प्राकृतिक नियमों तथा प्रकृति-रूप देवता द्वारा मिला है। इस अवस्था में यह आवश्यक है कि मानव-विचारों का सम्मान करते हुए वह राष्ट्र अपने पृथक् होने के कारणों की घोषणा करे।

"हम इन सत्यों को स्वयं सिद्ध मानते हैं, कि सब मनुष्य समान बनाए गए हैं। उनको परमात्मा ने कुछ बुनियादी अधिकार प्रदान किए हैं जिनमें जीवन-स्वतन्त्रता और सुख के साधन सम्मिलित हैं। इन अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए मनुष्यों में शासन-व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाता है, जो अपने उचित अधिकार प्रजा की सहमति से प्राप्त करती है। जब कोई शासन-व्यवस्था किसी रूप में इन उद्देश्यों के लिए घातक सिद्ध होती है, तो यह प्रजा का अधिकार होता है कि वे उसे बदलदें या मिटादें।"

घोषणा में आगे यह बताकर कि इंगलैंड के बादशाह ने उपनिवेशों के विरुद्ध क्या-क्या कार्य किया, और इंगलैंड वालों ने उनकी न्याय की माँग की कैसी उपेक्षा की, कहा गया कि "इसलिए हम लोग, जो संयुक्तराज्य अमरीका के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस में उपस्थित हैं, संसार के सर्वोच्च न्यायाधीश से अपील करते हुए इन उपनिवेशों की जनता के नाम पर गम्भीरता-पूर्वक यह घोषित करते हैं कि ये संयुक्त उपनिवेश स्वतंत्र और स्वाधीन राज्य हैं, और ऐसा इन्हें अधिकार पूर्वक होना चाहिए। ये ब्रिटिश ताज (बादशाह) के प्रति वफादार

होने से मुक्त हो गए हैं। इनका ग्रेटब्रिटेन से सब राजनैतिक सम्बन्ध टूट गया है और टूट जाना चाहिए। इन्हें स्वाधीन और स्वतंत्र राज्यों की हैसियत से युद्ध करने, सन्धि करने, व्यापार चलाने और वे सभी काम करने के अधिकार हैं, जो स्वतंत्र राज्य अधिकार-पूर्वक कर सकते हैं। इस घोषणा के समर्थन में, ईश्वर की सहायता का पूरा भरोसा करते हुए, हम आपस में अपने तन मन और धन का उत्सर्ग करने की शपथ लेते हैं।"

इस घोषणा के बाद अमरीकी उपनिवेशों का ग्रेटब्रिटेन से संग्राम छिड़ गया। लड़ाई में पहले तो अँगरेजों को कुछ सफलता मिली। पीछे तख्ता पलट गया। अन्त में उपनिवेशों की जीत हुई और वे इंगलैंड की प्रभुता से पूर्णतया मुक्त हो गए। सन् १७८३ में, वारसाई की सन्धि से इंगलैंड ने संयुक्तराज्य अमरीका की स्वाधीनता स्वीकार करली।

अमरीका की स्वाधीनता और ब्रिटिश साम्राज्य— इससे स्पष्ट है कि अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग तक अँगरेज अपने उपनिवेशों को भी स्वशासन के अधिकार देने में कितने अनुदार थे। ब्रिटिश साम्राज्य से अमरीका के निकल जाने पर अँगरेजों को बहुत दुख हुआ; अपनी प्रतिष्ठा की बात पर अड़े रहने से ही उन्होंने अमरीका को खोदिया। उन्हें यह कल्पना नहीं थी कि अमरीका यहाँ तक दृढ़ता दिखाएगा। अस्तु, जब कि अँगरेजों ने अमरीका को खोया, उसी समय के लगभग उन्होंने सौभाग्य से भारतवर्ष में अपने पांव जमा लिए थे। धीरे-धीरे यहाँ उनका प्रभुत्व बढ़ता गया। उन्होंने इस देश से उचितानुचित बेहद लाभ उठाया। इससे उन्हें अमरीका खोने से होने वाली हानि नहीं अखरी। फिर, स्वाधीन होने के बाद इंगलैंड और अमरीका के आपसी सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे। अमरीका इंगलैंड का इतना अच्छा सहायक सिद्ध हुआ, जितना वह पराधीनता

की अवस्था में शायद ही होता। अमरीका की स्वाधीनता-प्राप्ति से अँगरेजों ने एक शिक्षा ली। इसके बाद उन्होंने उपनिवेशों की क्रमशः अधिकार-प्राप्ति का विरोध नहीं किया। जब-जब उन्होंने जिस सीमा तक स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की, इंगलैंड ने उसे स्वीकार ही किया, उसे यह फिक्र रही कहीं कोई उपनिवेश अमरीका की तरह साम्राज्य से अलग न हो जाय। स्मरण रहे कि उनकी यह उदारता गोरी जातियों के उपनिवेशों तक ही सीमित रही। उदाहरणवत् आयर (आयर्लैंड) और भारतवर्ष को अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए सुदीर्घ और दृढ़ संघर्ष लेना पड़ा।

अब हम यह बतलाते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य के जिन भागों ने स्वराज्य प्राप्त किया, उनमें उसका क्या क्रम रहा।

साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य-प्राप्ति का क्रम—ब्रिटिश साम्राज्य के सब भागों को उनका वर्तमान राजनैतिक पद एक ही रीति से नहीं मिला। शासन-सुधार का क्रम अलग-अलग रहा है। खास प्रगति उन उपनिवेशों में हुई, जिनमें अंगरेजों या योरपियनों की संख्या अधिक थी। पहले उपनिवेशों में भीतरी शासन का अधिकार पाने पर जोर दिया गया, पीछे कुछ ने अपने बाहरी यानी दूसरे देशों सम्बन्धी नीति भी खुद ही तय करने की ओर ध्यान दिया। जिन उपनिवेशों ने इसमें सबसे ज्यादह सफलता पाई, वे अब स्वराज्य पाए हुए प्रदेश हैं; ये बहुत कुछ इंगलैंड की बराबरी के हो गए हैं।

साम्राज्यान्तर्गत भागों के स्वराज्य की प्रगति एक सदी से हुई है, तो भी पिछले तीस वर्ष से इसमें बहुत वृद्धि हुई है; इसका मुख्य कारण यह है जब से इन प्रदेशों ने योरपीय महायुद्ध (१६१४-१८) में भाग लिया, उनमें राष्ट्रीयता की भावना का बहुत तेज विकास हुआ और वे यह चाहने लगे कि हम विदेश-नीति में भी अपना स्वतन्त्र और स्पष्ट मत सूचित किया करें। पीछे शान्ति-परिषद् और राष्ट्र-संघ में शामिल होने से उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय महत्व मिल गया। सन्

१९२६ की साम्राज्य-परिषद् ने ब्रिटिश साम्राज्य की उस समय की परिस्थिति को नियमानुसार मान लिया। इसके बाद की वैधानिक बातें प्रायः उस परिषद् की रिपोर्ट में बताए हुए सिद्धान्तों से ही निकलीं।

साम्राज्य-परिषद्—उन्नीसवीं सदी के पिछले हिस्से तक ब्रिटिश सरकार उपनिवेशों के मामलों में बहुत-कुछ स्वयं ही निर्णय कर देती थी, उनसे विशेष परामर्श नहीं किया जाता था। सबसे पहले 'कालोनियल कान्फ्रेंस' (उपनिवेश-परिषद्) सन् १८८७ में महारानी विक्टोरिया की जुबिली के अवसर पर हुई। उपनिवेशों के विषय में कोई खास निर्णय नहीं हुआ; उससे पहले साम्राज्य के संघ-शासन की चर्चा थी, उसका भी प्रस्ताव उपस्थित न किया गया। पीछे इस परिषद् के अधिवेशन १८९७, १९०२ और १९०७ में हुए। सन् १९०७ ई० से परिषद् का नाम साम्राज्य-परिषद् (इम्पीरियल कान्फ्रेंस) हो गया। इसके अधिवेशन महत्वपूर्ण होने लगे। यह विचार हुआ कि स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के प्रधान मन्त्री तथा साम्राज्य के अन्य भागों की ओर से इंगलैंड का उपनिवेश-मन्त्री इसमें सम्मिलित हो, सभापति का पद इंगलैंड का प्रधान मंत्री ग्रहण किया करे और अधिवेशन चौथे वर्ष हो, परिषद् के प्रस्ताव परामर्श के रूप में ही हों, विरुद्ध मत रखनेवालों के लिए उनका बंधन न हो।

साम्राज्य परिषद् का पहला अधिवेशन सन् १९११ में हुआ। ग्रेटब्रिटेन चाहता था कि उपनिवेश उसकी जल-सेना के लिए सहायता दें परन्तु आस्ट्रेलिया आदि ने अपनी छोटी-छोटी जल-सेनाएँ अलग रखना ही अच्छा समझा। सन् १९१५ में महायुद्ध के कारण कान्फ्रेंस का साधारण अधिवेशन न हो सका। पीछे सन् १९१७ में इंगलैंड के प्रधान मंत्री ने स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के प्रधान मन्त्रियों को इंगलैंड के युद्ध-मन्त्रिमण्डल की खास बैठकों में भाग लेने के लिए बुलाया। भारतवर्ष के भी 'प्रतिनिधि' लिए गए। इस प्रकार बढ़ा हुआ मंत्रि-

मंडल 'साम्राज्य-युद्ध मंत्रिमण्डल' कहा जाने लगा। युद्ध और शान्ति सम्बन्धी बहुत महत्वपूर्ण तथा जरूरी विषयों का विचार इसी में हुआ। इसका सभापति इंगलैंड का प्रधान मंत्री होता था। युद्ध के कम महत्व के विषय, या ऐसे विषय जिनका युद्ध से सीधा सम्बन्ध नहीं था, उनका विचार साम्राज्य-युद्ध-परिषद में हुआ; इसका सभापति इंगलैंड का उपनिवेश-मंत्री होता था।

यह निश्चय किया गया कि स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों को कामनवेल्थ के स्वतन्त्र राष्ट्र, और भारतवर्ष को उसका एक महत्वपूर्ण अंग, माना जायगा। इन उपनिवेशों तथा भारतवर्ष को विदेश-नीति के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करने का पूरा अधिकार होगा। इस बात की यथेष्ट व्यवस्था की जायगी कि जिन महत्वपूर्ण विषयों का सम्बन्ध साम्राज्य के कई भागों से हो, उनका निर्णय आपस की सलाह से किया जाय; और, उस सलाह के आधार पर, अलग-अलग सरकारों के निश्चय के अनुसार, सम्मिलित कार्रवाई की जाय।

योरपीय महायुद्ध (१६१४-१८) में उपनिवेशों तथा भारतवर्ष ने इंगलैंड की खूब सहायता की। महायुद्ध समाप्त होने पर स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों ने वार्साई के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करके राष्ट्र-संघ की स्वतन्त्र सदस्यता प्राप्त की। तब से ये प्रदेश प्रायः ब्रिटेन की बराबरी के हो गए। यद्यपि भारतवर्ष की ओर से भी, वार्साई के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये गए थे, और यह देश राष्ट्र-संघ का सदस्य भी बनाया गया, इसे वह राजनैतिक पद प्राप्त नहीं हुआ, जो स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों को मिला।

साम्राज्य-परिषद में प्रथम योरपीय महायुद्ध से पहले भरतवर्ष की ओर से कोई अलग आदमी भाग नहीं लेता था; पीछे भारतमन्त्री, तथा भारत-सरकार से नामज़द किए हुए दो आदमी इसके अधिवेशनों में शामिल होने लगे। साम्राज्य-परिषद के, सन् १६२६ के अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह स्वीकार किया गया कि ग्रेटब्रिटेन, और साम्राज्य

के स्वराज्य प्राप्त प्रदेशों का पद आपस में बराबर है। भीतरी या बाहरी किसी विषय में कोई दूसरे के अधीन नहीं है; बादशाह के प्रति राजभक्ति रखने से सब एक सूत्र में बंधे हैं, और ब्रिटिश कामनवेल्थ के सदस्य होने की हैसियत से वे स्वतंत्रता पूर्वक मिले हुए हैं।

परिषद ने यह भी निश्चय किया कि हरेक स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश का गवर्नर-जनरल बादशाह का प्रतिनिधि है, उसका उस प्रदेश के शासन सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों में वही पद है, जो बादशाह का ग्रेटब्रिटेन में है। परिषद ने इन प्रदेशों के सन्धि करने के भी कुछ अधिकारों को स्वीकार किया। उसकी सिफारिश के अनुसार सन् १९२९ में इन प्रदेशों की भावी शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक कमेटी नियत की गई। इस कमेटी ने सिफारिश की कि ब्रिटिश पार्लिमेंट सन् १९२६ की परिषद के निश्चय के आधार पर एक कानून बनाए। साम्राज्य-परिषद के अगले अधिवेशन में, जो सन् १९३० में हुआ; इस विषय पर आवश्यक विचार हुआ। अन्त में पार्लिमेंट में परिषद के सन् १९२६ और १९३० के प्रस्तावों को अमल में लाने के लिए सन् १९३१ में 'वेस्टमिन्स्टर-स्टेट्यूट' नाम का कानून बनाया। स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों और आयरिश फ्री स्टेट ने इसी वर्ष इस कानून को स्वीकार कर लिया। इस समय से ब्रिटिश सरकार और स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों का सम्बन्ध इसी कानून के अनुसार रहने लगा।

वेस्टमिंस्टर कानून--इस कानून की प्रस्तावना में कहा गया है कि (क) क्योंकि बादशाह ब्रिटिश कामनवेल्थ के सदस्यों के स्वतंत्र मेल की निशानी है, और वे सदस्य बादशाह के प्रति राजभक्ति रखते हुए आपस में मिले हुए हैं, बादशाह के उत्तराधिकार, पद या सम्मान आदि के कानून के परिवर्तन के बारे में ब्रिटिश पार्लिमेंट के साथ-साथ स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों की पार्लिमेंटों की भी स्वीकृति आवश्यक होगी। (ख) अब से, ब्रिटिश संयुक्त-राज्य की पार्लिमेंट द्वारा बनाया हुआ कोई कानून किसी स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश के कानूनों का भाग नहीं माना

जायगा, जब तक कि वह प्रदेश उसके लिए प्रार्थना न करे, और उससे सहमत न हो।

इस कानून में 'डोमिनियन' (स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश) की कोई परिभाषा या व्याख्या न देकर उनके नाम गिना दिए गए। इस कानून की मुख्य बात यह है कि साम्राज्य के किसी स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश का भविष्य में बननेवाला कोई कानून या उसका कोई अंश इस आधार पर रद्द नहीं होगा कि उसका ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा बनाए हुए कानून या नियम से मेल नहीं बैठता। स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश की पार्लिमेंट को यह अधिकार होगा कि वह ब्रिटिश पार्लिमेंट के कानून को उस सीमा तक रद्द या संशोधित करे, जहाँ तक उसका सम्बन्ध उस प्रदेश से हो।

ब्रिटिश राष्ट्रमंडल—इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १९२६ की साम्राज्य-परिषद् के प्रस्तावों में और पीछे सन् १९३१ के वेस्टमिंस्टर कानून में ब्रिटिश साम्राज्य को 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' या ब्रिटिश राष्ट्रमंडल कहा गया। वास्तव में इस समय 'साम्राज्य' शब्द में शोषण और हिन्सा की गंध आने लग गई थी। यह शब्द इतना अप्रिय हो चला था कि कोई स्वाभिमानी राष्ट्र अपने आपको साम्राज्य का अंग कहलाना पसन्द नहीं करता था, इससे उस राष्ट्र की अधीनता सूचित होती थी। जो राज्य अपने आन्तरिक विषयों में स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके थे, और बाहरी मामलों में अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त करते जा रहे थे, उनके स्वाभिमान की रक्षा के लिए और इंगलैंड को भी सभ्य संसार में कुछ ऊंचा दिखाने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के सूत्रधारों ने अपने संगठन को 'ब्रिटिश राष्ट्रमंडल' कहना शुरू किया।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से राष्ट्रमंडल

पिछले परिच्छेद में यह बताया जा चुका है कि ब्रिटिश साम्राज्य-परिषद् का जो अधिवेशन सन् १९२६ में हुआ, उसमें ब्रिटिश साम्राज्य को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल कहा गया था। पीछे सन १९३१ के वेस्टमिन्स्टर कानून में इसी नाम का उपयोग हुआ। उसके बाद तो यही नाम चल पड़ा। इसके बाद सन् १९४८ में इस नाम में परिवर्तन हुआ, और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में से ब्रिटिश शब्द निकाल दिया गया और इसे केवल राष्ट्रमंडल कहा जाने लगा। यह परिवर्तन क्यों और किस प्रकार हुआ, इसका विचार करने से पूर्व हमें इस संगठन की इस बीच की अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।

ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के संगठन में परिवर्तन—सन १९२६ के बाद ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के संगठन में मुख्यतया दो परिवर्तन हुए—

(१) सन् १९३५ में भारतवर्ष के लिए जो नया विधान बना, उसके अनुसार बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया। बात यह थी कि बर्मा अपनी पैदावार और खासकर मिट्टी के तेल के कारण इंगलैंड के लिए बहुत उपयोगी रहा था। सिंगापुर में जल-सेना का केन्द्र बनने से बर्मा का महत्व ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के लिए और भी बढ़ गया था। इधर, विशेषतया प्रथम योरपीय महायुद्ध के बाद ब्रिटिश भारत में स्वातंत्र्य-आन्दोलन अधिकाधिक अग्रसर होने से अँगरेजों को उसके

साथ बर्मा के स्वतंत्र होने की आशंका थी। अस्तु, उन्होंने सन् १९३५ में भारत तथा बर्मा के जनमत पर ध्यान न देकर बर्मा के लिए भारत से अलग शासनपद्धति का निर्माण कर दिया। अब से भारतवर्ष की तरह बर्मा को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का एक अलग महत्वपूर्ण अंग माना जाने लगा। स्मरण रहे कि इन दोनों देशों को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के स्वतंत्र राष्ट्रों या सदस्यों का पद नहीं दिया गया।

(२) आयरिश फ्री स्टेट सन् १९३७ में आयर नाम से स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्य बना और सन् १९४८ में यह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से पृथक् हो गया। इसके विषय में आगे खुलासा लिखा जाता है।

स्वतंत्र प्रजातंत्र आयर की स्थापना—प्रथम योरपीय महायुद्ध से बहुत पहले से आयर्लैंड, खासकर उत्तरी आयर्लैंड को छोड़ कर उसके शेष भाग के निवासी इंगलैंड की प्रभुता से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहे थे। वे स्वराज्य (होमरूल) चाहते थे। महायुद्ध के समय आयरिश नेताओं ने अपना आन्दोलन स्थगित कर दिया था। सन् १९१९ में ग्रेटब्रिटन और आयर्लैंड में लड़ाई हुई, जो सन् १९२१ तक रही। सन् १९२० में ब्रिटिश पार्लिमेंट ने कानून पास करके उत्तरी आयर्लैंड और दक्षिण आयर्लैंड के लिए अलग-अलग पार्लिमेंट की व्यवस्था की। उत्तरी आयर्लैंड ने इसे स्वीकार कर सन् १९२१ में पार्लिमेंट का निर्वाचन किया, यह पार्लिमेंट ब्रिटिश पार्लिमेंट के ही अधीन रही।

दक्षिण आयर्लैंड तो पहले से ही प्रजातंत्र की घोषणा कर चुका था, उसने सन् १९२१ ई० की सन्धि से 'आयरिश फ्री स्टेट' की स्थापना की। इस विषय का कानून १९२२ से अमल में आया। इस से 'आयरिश फ्री स्टेट' एक जुदा राज्य हो गया। सन् १९३२ के चुनाव में डी० वेलेरा के दल की विजय हुई। आप बादशाह के प्रति राजभक्ति की शपथ लेने के विरुद्ध थे। आपने इस प्रथा को उठा देने का प्रस्ताव 'डेल' (प्रतिनिधि-सभा) में पास करा लिया। सिनेट ने उसे

पास न किया। पीछे १८ महीने की आवश्यक मियाद बीत जाने पर वह फिर 'डेल' में पेश किया गया। इस सभा में इस बार भी वह बहुमत से स्वीकार हुआ। सिनेट द्वारा नामंजूर हो जाने पर भी अब वह नियमानुसार कानून बन गया। दूसरा काम डी० वेलेरा ने यह किया कि इंगलैंड को लगान सम्बन्धी रकम देना बन्द कर दिया। आयरिश फ्री-स्टेट से 'यूनियन जेक' नाम का अँगरेजी झंडा हटा दिया गया; वहाँ अब स्वतंत्र आयरिश पताका फहराने लगी। डी० वेलेरा की स्पष्ट नीति यह रही कि शासन-विधान की उन सब धाराओं में संशोधन या परिवर्तन कर दिया जाय जो एक राष्ट्र की पूर्ण प्रभुता के अधिकार के विरुद्ध हों। इस तरह सन् १९३६ के अन्त में, शासन-विधान मूल मसविदे से काफी बदल गया। आखिर, सन् १९३७ में जनता के मत के अनुसार नया विधान बनाया गया। इसके अनुसार इस राज्य का नाम 'आयरिश फ्री स्टेट' हटा कर पुराना नाम 'आयर' (आयर्लैंड) रखा गया। उत्तरी आयर्लैंड अभी इसमें शामिल नहीं हुआ, पर उसके लिए दरवाज़ा खुला रखा गया।

सन् १९३७ का विधान—इस विधान की प्रस्तावना की भाषा बहुत मार्मिक और हृदयग्राही है। इसमें प्रभु ईसा मसीह के प्रति अधीनता सूचित की गयी है, जिसने आयरिश जनता के पूर्वजों की, कठिन परीक्षा की सदियों में, रक्षा की। राष्ट्र की न्यायोचित स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए पूर्वजों के वीरतापूर्ण संघर्ष को याद किया गया है। विधान का लक्ष्य यह बताया गया है कि सार्वजनिक हित की उन्नति हो, व्यक्तियों के सम्मान और स्वतन्त्रता का निश्चय रहे, सच्ची सामाजिक व्यवस्था प्राप्त हो, देश में एकता हो, और अन्य राष्ट्रों से मेल-जोल रहे।

विधान में कहा गया है कि आयर्लैंड एक प्रभुताप्राप्त, स्वतन्त्र और प्रजातन्त्र राज्य है। आयरिश राष्ट्र का यह चिरस्थायी, कभी न मिटनेवाला, और प्रभुतायुक्त अधिकार है कि खुद अपनी शासनपद्धति पसन्द

करे, दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्ध ठहराये और अपने राजनैतिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन का, अपनी प्रतिभा और परम्पराओं के अनुसार, विकास करे। राष्ट्रीय झण्डा तिरंगा है, उसमें हरा, सफेद और नारङ्गी रङ्ग होता है। सरकारी कामकाज की प्रमुख भाषा आयरिश है; हाँ, अँगरेजी के इस्तेमाल की भी इजाजत है।

दूसरे योरपीय महायुद्ध (१६३६-४५) में आयर तटस्थ रहा; उसने इंगलेंड के पक्ष में होकर जर्मनी से युद्ध नहीं छेड़ा। इससे कई-कई सवाल पैदा हुए, जैसे—क्या आयर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (कामन-वेल्थ) का सदस्य है ? और क्या कोई सदस्य-राष्ट्र ऐसे समय तटस्थ रह सकता है, जब कि बादशाह ने युद्ध छेड़ रखा हो। यह कहा जा सकता है कि सन् १६३७ से जहाँ तक भीतरी मामलों का सम्बन्ध है, आयर रिपब्लिक था; और विदेशी-नीति सम्बन्धी कुछ बातों में वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य था। वह ऐसा 'डोमीनियन' था, जिसमें बादशाह की तरफ से गवर्नरजनरल आदि कोई एजन्ट नहीं रहता था। वहाँ स्वदेश सम्बन्धी किसी भी कानून या महत्वपूर्ण आज्ञापत्र पर प्रेसिडेन्ट के ही हस्ताक्षर होते थे। घरू विषयों में बादशाह का कोई स्थान नहीं था। लेकिन बाहरी मामलों में, आयर के मन्त्रियों की सलाह लेकर, बादशाह आवश्यक कार्रवाई कर सकता था। अपने राज्य से बाहर आयर के सब नागरिक ब्रिटिश नागरिक थे, और इस हैसियत से उन्हें ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में कुछ नागरिक अधिकार, और विदेशों में सुरक्षा के अधिकार प्राप्त थे।

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का राष्ट्रमंडल में परिवर्तन— जैसा पहले कहा गया है, सन् १६४७ में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के कई भागों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। बर्मा तो स्वतंत्र होने के साथ ही ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल से पृथक हो गया। इधर भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ, इसके साथ ही इसका एक भाग अलग होकर पाकिस्तान कहा जाने लगा, वह भी एक स्वतन्त्र राज्य हुआ। सीलोन (लङ्का) ने भी स्वतन्त्रता प्राप्त की। इस प्रकार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में तीन स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण हो

गया, जिनके निवासियों का जाति और वर्ण अँगरेजों से भिन्न है। सवाल यह पैदा हुआ कि ये राज्य जिनकी अपनी विशेष परम्परा और इतिहास आदि है उस संस्था के सदस्य कैसे रहें जिसके नाम के साथ ब्रिटिश शब्द लगा होने से, उसमें ब्रिटिश प्रभुता दिखाई पड़ती है। इंगलैंड दूसरे महायुद्ध के बाद योरप में प्रथम क्या दूसरी श्रेणी का भी राष्ट्र नहीं रहा था। वह इन एशियाई राज्यों को अपने संगठन में रखने के लिए उत्सुक था, और क्योंकि इन राज्यों का बहुत समय से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध चला आ रहा था, ये भी उस सम्बन्ध को एक दम तोड़ देना नहीं चाहते थे। इसलिए अक्तूबर १९४८ में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के राज्यों के प्रधान मंत्रियों ने एक सम्मेलन करके यह निश्चय किया कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नाम में से 'ब्रिटिश' शब्द निकाल दिया जाय; इसे भविष्य में केवल 'राष्ट्रमण्डल' कहा जाया करे। नाम के साथ रूप में भी परिवर्तन हुआ है; इसका विचार आगे किया जायगा।

राष्ट्रमण्डल से आयर अलग—सन् १९४९ में आयर ने वैदेशिक सम्बन्ध सूचक कानून रद्द कर दिया। यह सम्बन्ध इतना ही था कि जब तक आयर राजदूत या व्यापार-दूतों की नियुक्ति और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के लिए इंगलैंड के बादशाह को मान्यता देता रहे, तब तक बादशाह आयर की ओर से उक्त कर्तव्य को पूरा करता रहे। अब इस प्रणाली का अन्त हो गया है और बादशाह के स्थान पर आयर का प्रधान ही उक्त कार्य करेगा। आयर अब राष्ट्रमंडल का सदस्य नहीं है, वह पूर्णतया सार्वभौम सत्तायुक्त राष्ट्र है।

आयर और राष्ट्रमंडल का सम्बन्ध; एक नयी पद्धति—इससे एक नयी पद्धति स्थापित की गई। आयरिश प्रधान मन्त्री श्री कॉस्टोलो के प्रस्ताव के अनुसार आयर का सहयोग और सम्पर्क राष्ट्रमण्डल से बना रहेगा वह ब्रिटिश नागरिकों को अपने नागरिक मानेगा। इसी प्रकार इंगलैंड आयरिश नागरिकों को अपने नागरिक

मानेगा। इससे ब्रिटेन-स्थित आयरिशों की भावी नागरिकता की समस्या हल हो जायगी। आयर में ब्रिटिश नागरिक, और इंगलैंड में आयरिश नागरिक विदेशी नहीं माने जायँगे। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री एटली ने आयर के इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार उस मध्यम मार्ग को ढूँढ़ निकाला गया है, जिससे राष्ट्र मंडल के अन्तर्गत पूर्ण सावभौम राज्यों का अस्तित्व बना रह सकता है।

राष्ट्रमण्डल के अंग—राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत अब ब्रिटिश संयुक्त-राज्य के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रदेश हैं :—

(१) स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश—केनेडा, दक्षिणी अफ्रीका का यूनियन, आस्ट्रेलिया, और न्यूजीलैंड।

(२) स्वाधीन राज्य—भारत, पाकिस्तान, और सीलोन (लंका)।

इनका ब्रिटिश सरकार से क्या सम्बन्ध है, तथा इनकी शासनपद्धति कैसी है, इसका आगे क्रमशः विचार किया जायगा।

राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध विच्छेद—कुछ वर्ष पहले, जब कि राष्ट्रमंडल को ब्रिटिश साम्राज्य कहा जाता था, राजनीतिज्ञों के सामने यह प्रश्न था कि क्या स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्य से अपना सम्बन्ध तोड़ सकते हैं। ब्रिटिश सरकार इसका ठीक-ठीक जवाब देने से बचती रही। सन् १९३० के साम्राज्य-सम्मेलन ने भी इस विषय में कुछ निश्चय नहीं किया। सन् १९३३ में आयरिश फ्री-स्टेट सरकार से इस बात का साफ उत्तर चाहा कि यदि आयरिश जनता ब्रिटिश कामनवेल्थ से अपना सम्बन्ध तोड़ने का फैसला करे तो क्या वह युद्ध या आक्रमण की कार्रवाई समझी जायगी। ग्रेट ब्रिटन ने बड़ी चतुराई से कहा कि वह ऐसे प्रश्न का उत्तर देना नहीं चाहती, जो बिलकुल मनगढ़ंत या कल्पनात्मक है, और इसीलिए जब तक असल में संकट मौजूद न हो, वह यह नहीं बतला सकता कि वैसा होने की दशा में उसका क्या रुख

होगा। साधारण तौर से स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों को जिस राजनैतिक या आर्थिक अधिकार की आवश्यकता प्रतीत होती है, उसके उपयोग में ग्रेट ब्रिटेन बाधक नहीं होता; और ये प्रदेश साम्राज्य में बने रहने में अपनी कोई हानि नहीं समझते।

अब ब्रिटिश साम्राज्य ने राष्ट्रमण्डल का नाम ग्रहण कर लिया तो पूर्वोक्त प्रश्न का रूप यह होगया कि क्या कोई स्वराज्य-प्राप्त प्रदेश राष्ट्र-मण्डल से सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है। इस प्रश्न का उत्तर शब्दों से नहीं कार्य से मिल गया है। पहले कहा जा चुका है कि आयर ने राष्ट्रमण्डल से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। उसका यह कार्य युद्ध या आक्रमण की कार्रवाई नहीं समझी गई। राष्ट्रमंडल का अंग न रहनेपर भी आयर का उससे सम्पर्क और सहयोग बना हुआ है।

सोलहवाँ परिच्छेद

स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश और ब्रिटिश सरकार

अब हम इस बात का विचार करेंगे कि राष्ट्रमण्डल के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों का ब्रिटिश सरकार से क्या सम्बन्ध है।

गवर्नर-जनरल और गवर्नर—न्यूजीलैंड ने अपने गवर्नर-जनरल को और न्यूफाउंडलैंड ने अपने गवर्नर को, पहले की तरह बादशाह के एवं ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि के रूप में रखा है। शेष तीन उप-निवेशों में गवर्नर जनरल का वही स्थान है, जो बादशाह का इंगलैंड की शासन-व्यवस्था में है; वह बादशाह का प्रतिनिधि है, न कि ब्रिटिश सरकार या उसके किसी अँग का।

[ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कनेडा और दक्षिण अफ्रीका में हाई-कमिश्नर और आस्ट्रेलिया में 'रिप्रेजेंटेटिव' रहता है।]

अब ब्रिटिश सरकार और राष्ट्रमण्डल के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों की सरकारों में जो पत्र-व्यवहार होता है, वह प्रधान मन्त्रियों द्वारा होता है, न कि गवर्नर-जनरल द्वारा। गवर्नर-जनरल को मुख्य-मुख्य सरकारी कागज़ों की कापी भेज दी जाती है, उसे प्रबन्धकारिणी सभा के निश्चयों की सूचना उसी प्रकार दी जाती है, जिस प्रकार इंगलैंड के बादशाह को वहाँ के मंत्रिमण्डल के निश्चयों की।

गवर्नर-जनरल सीधा बादशाह से पत्रव्यवहार कर सकता है। उसे बादशाह नियुक्त करता है, परन्तु नियुक्ति स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश की सरकार की इच्छा के अनुसार ही की जाती है। गवर्नर-जनरल का कार्यकाल साधारण तौर से पाँच या छः साल होता है। इस बीच में उसके वेतन में कमी नहीं की जाती।

आस्ट्रेलिया के छः प्रान्तों में से हरेक के लिए गवर्नर की नियुक्ति भी बादशाह द्वारा होती है। इनकी नियुक्ति बादशाह ब्रिटिश सरकार के परामर्श के अनुसार करता है।

संधि और युद्ध; विदेश नीति—जब कोई स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश राष्ट्रमण्डल के बाहर के देश से संधि करना चाहता है तो उसे इस बात का अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए कि इसका राष्ट्रमण्डल के दूसरे हिस्सों की सरकारों पर क्या प्रभाव पड़ने की सम्भावना है, और, जिन सरकारों से उस संधि का सम्बन्ध आता हो, उन्हें उसकी सूचना दे देनी चाहिए, जिससे वे इसके विषय में विचार कर सकें। इस प्रकार की सूचना पानेवाली हरेक सरकार का कर्त्तव्य है कि वह जहाँ तक हो सके, जल्दी उस संधि के सम्बन्ध में अपना विचार ज़ाहिर करे। जब तक कि संधि का प्रस्ताव करनेवाली सरकार को दूसरी सरकारों के विरोध की सूचना न मिले, वह यह मानते हुए अपनी कार्रवाई जारी रख सकती है कि संधि आम तौर से सब को मान्य है। तो भी दूसरी सरकारों पर किसी प्रकार का बंधन डालने वाली बात करने से पहले यह आवश्यक है कि उनकी साफ रजामन्दी ले ली जाय। यदि सूचना

पानेवाली कोई सरकार संधि के बारे में विशेष विचार करना आवश्यक समझे तो वह इसके लिए अपना प्रतिनिधि नियत करदे। ऐसे प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय और समझौते के बाद संधि का मसविदा तैयार किया जाता है, और उस पर उक्त उपनिवेश का, बादशाह द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि हस्ताक्षर करता है। इसके बाद संधि करनेवाले उपनिवेश की सरकार अपनी पार्लिमेंट की सलाह से उस पर अपनी मंजूरी देती है। तब वह संधि अमल में आती है। इसमें ब्रिटिश सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करती।

जब कोई स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश दूसरे स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश या उपनिवेशों से संधि करना चाहता है, या संधि का विषय ऐसा होता है, जिसका सम्बन्ध राष्ट्रमण्डल भर से होता है तो राष्ट्रमण्डल की एकता की भावना रखने का प्रयत्न किया जाता है। राष्ट्रमण्डल के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश तथा इंगलेंड की सरकार उसके सम्बन्ध में आपस में विचार करती है। यदि आवश्यक होता है तो सब सरकारों के प्रतिनिधियों की कान्फ्रेंस की जाती है। काफी सोच-विचार बहस के बाद संधि की शर्तें तय की जाती हैं। संधि के अन्तिम स्वरूप का निश्चय हो जाने पर विविध सरकारों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर होते हैं। पीछे हरेक सरकार अपनी-अपनी पार्लिमेंट की सलाह से संधि की स्वीकृति देती है।

यदि ब्रिटिश सरकार किसी देश से संधि करती है तो वह संधि राष्ट्रमंडल के किसी स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश की सरकार पर उस समय तक लागू नहीं होती, जब तक कि उस उपनिवेश की सरकार स्वतन्त्र रूप से उस पर अपनी स्वीकृति न दे दे।

यदि ब्रिटिश सरकार किसी राज्य से युद्ध करे तो राष्ट्रमंडल के किसी स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश के लिए इंगलैंड का पक्ष लेकर उस युद्ध में भाग लेना आवश्यक नहीं है। वह चाहे तो तटस्थ रह सकता है। दूसरे योरपीय महायुद्ध में आयर ने ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का अंग होते हुए भी जर्मनी से युद्ध नहीं छेड़ा।

स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश विदेशी राज्यों में अपने स्वतंत्र राजदूत रख सकते हैं। उदाहरण के लिए केनेडा का अपना राजदूत वाशिंगटन (अमरीका के संयुक्त-राज्य) में रहता है।

स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों की विदेश-नीति सम्बन्धी एक विचार करने की बात हिन्दुस्तानियों के वहाँ जाने और बसने की है। इसके सम्बन्ध में पीछे विचार किया जायगा।

रक्षा सम्बन्धी नीति—आरम्भ में, साम्राज्य के सभी भागों की रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार अपनी सेनाओं द्वारा प्रबन्ध करती थी। इसमें धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ। सन् १६२३ और १६२६ की साम्राज्य-परिषदों में यह निश्चय हुआ कि साम्राज्य के प्रत्येक स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश की पार्लिमेंट अपनी-अपनी सरकार की सिफारिश पर यह निश्चय करे कि उसे अपने उपनिवेश की रक्षा के लिए क्या-क्या उपाय करने चाहिएँ। अपने यहाँ की भीतरी तथा बाहरी रक्षा करने का मुख्य उत्तरायित्व उस उपनिवेश की सरकार पर है। जहाँ तक सम्भव हो, प्रत्येक उपनिवेश में जल-सेना, स्थल-सेना और वायु-सेना की उन्नति इस प्रकार की जाय कि उसकी व्यवस्था, ट्रेनिंग, हथियार, स्टोर और दूसरा सामान एक ही ढङ्ग का हो, जिससे वह दूसरे उपनिवेशों की सेना से; आवश्यकता होने पर शीघ्र ही सहयोग कर सके। पहले ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा सम्बन्धी मोटी-मोटी बातों का विचार साम्राज्य-परिषद, और विशेष बातों का विचार साम्राज्य-रक्षा-कमेटी करती थी। अब ब्रिटिश साम्राज्य का नाम राष्ट्रमंडल हो जाने से उक्त संस्थाओं के नाम में तदनुसार परिवर्तन हो जायगा।

न्याय सम्बन्धी अपील—प्रिवी कौंसिल के सम्बन्ध में, चौथे परिच्छेद में कहा जा चुका है। उसकी न्याय-उपसमिति साम्राज्य के कुछ भागों के मुकदमों की अन्तिम अपील सुनती है। इसमें स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के भी कुछ न्यायाधीश होते हैं। इन उपनिवेशों में से आस्ट्रेलिया ने सन् १६०० में अपने शासन-विधान में यह व्यवस्था

करली कि वहाँ के विधान सम्बन्धी विषयों में वहाँ का ही हाईकोर्ट अन्तिम निर्णय किया करे। सन् १९०९ में दक्षिण अफ्रीका ने भी इस दिशा में कदम बढ़ा दिया। दूसरे उपनिवेशों के भी बहुत कम मुकदमों की अपीलें इस उपसमिति में जाती हैं। ये उपनिवेश अपने-अपने शासन विधान में इस विषय का संशोधन करके, प्रिवी-कौंसिल से अपना सम्बन्ध हटा सकते हैं।

राष्ट्रमंडल के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश अब स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं; किसी पर दूसरे का दबाव नहीं है। हरेक उपनिवेश अब यह खुद निश्चय करता है कि दूसरे उपनिवेशों से वह कहाँ तक सहयोग करे। इस प्रकार धीरे-धीरे, लेकिन बड़ी मज़बूती से, ये अपनी स्वतंत्रता बढ़ाते जा रहे हैं।

सतरहवाँ परिच्छेद

स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों का शासन

[(क) केनेडा, (ख) दक्षिण अफ्रीका का यूनियन, (ग) आस्ट्रेलिया, और (घ) न्यूजीलैंड]

अँगरेजों के उपनिवेश संसार के जुदा-जुदा हिस्सों में हैं। सब उपनिवेशों में से सिर्फ ऊपर लिखे चार स्वराज्य पाए हुए हैं। इन उपनिवेशों का कुल क्षेत्रफल लगभग ७५ लाख वर्ग मील, यानी सारे राष्ट्रमंडल के आधे से अधिक है।

इन उपनिवेशों की शासनपद्धति कुछ उसी ढङ्ग की है, जैसी ग्रेट-ब्रिटेन की; और क्योंकि उसका विचार इस पुस्तक के पहले खंड में खुलासा तौर पर किया जा चुका है, यहाँ उसके सम्बन्ध में, थोड़े में ही लिखा जाता है। इन उपनिवेशों का ब्रिटिश सरकार से जो

सम्बन्ध है, वह पिछले परिच्छेद में व्योरेवार बताया गया है, उसे यहाँ दोहराने की जरूरत नहीं।

(क) केनेडा

यह उपनिवेश उत्तरी अमरीका का उत्तरी हिस्सा है। यहाँ की गोरी जनता उन लोगों की है, जो सतरहवीं सदी में योरप के 'धार्मिक' अत्याचारों के कारण यहाँ आए थे। इस उपनिवेश के जुदा-जुदा हिस्सों में अँगरेज समय-समय पर आकर बसे; कुछ हिस्से युद्ध या सन्धि से भी ब्रिटिश साम्राज्य में आए हैं। इस उपनिवेश का कुल क्षेत्रफल सैंतीस लाख वर्गमील हैं। यहाँ की जनसंख्या सन् १९४१ की गणना के अनुसार एक करोड़ पन्द्रह लाख थी।

ऐतिहासिक परिचय--योरपीय जातियों में सबसे पहले यहाँ आकर बसने वाले फ्रांसीसी थे। अंगरेज़ यहाँ बहुत पीछे, सन् १७१३ ई० से आने लगे। उस वर्ष फ्रांस और इंगलैंड की एक लम्बी लड़ाई खतम हुई, और, फ्रांस ने अँगरेज़ों को केनेडा की कुछ ज़मीन और न्यूफाउन्डलैंड दिया। केनेडा का कुछ और हिस्सा इंगलैंड को फ्रांस से, एक दूसरी लड़ाई की सुलह होने पर, मिला।

केनेडा के उत्तर में अंगरेज़ों का बल अधिक था, और दक्षिण भाग में फ्रांसीसियों की संख्या विशेष थी। ये लोग आपस में लड़ते रहते थे। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने सन् १८३९ में लार्ड डरहम को यहाँ भेजा कि वह जाँच करके बतलावे कि इन दोनों हिस्सों का आपसी मनमोटाव किस तरह दूर हो। लार्ड डरहम की रिपोर्ट केनेडा के राजनैतिक इतिहास में बड़े महत्व की है। केनेडा में उस समय जातिगत बैर-विरोध बहुत अधिक था; अंगरेज और फ्रांसीसी बात-बात में आपस में लड़ते-झगड़ते थे; अज्ञान फैला हुआ था; केनेडा वाले उस समय अपने देश की रक्षा करने में भी असमर्थ थे। यह सब होते हुए भी, लार्ड डरहम ने अपनी रिपोर्ट में उदारता और दूरन्देशी से जोरदार शब्दों में सिफारिश की कि केनेडा को उत्तरदायी शासन

दिया जाय; उसके दोनों हिस्सों को मिलाकर उनका शासन केनेडा की पार्लिमेंट के अधीन कर दिया जाय। इंगलैंड के कुछ राजनीतिज्ञ इससे सहमत न थे, वे दमन-नीति के पक्ष में थे। उनके विचार से सारे असंतोष और विद्रोह का एक ही उपाय था—दमन और दण्ड से शिक्षा देना। परन्तु केनेडा के, और खुद इंगलैंड के सौभाग्य से उनकी कुछ न चली; और, ब्रिटिश सरकार ने लार्ड डरहम की रिपोर्ट स्वीकार कर ली।

शासनपद्धति—सन् १८६७ ई० में ब्रिटिश पार्लिमेंट में, 'ब्रिटिश उत्तरी अमरीका कानून' पास हो गया। इसमें उन प्रस्तावों को कानूनी रूप दिया गया, जो क्यूबेक (केनेडा) में बहुत वादविवाद या बहस मुबाहसे, और समझौते के बाद खुद केनेडा वालों ने किए थे। पहले पुराना केनेडा (अन्टेरिया और क्यूबेक), नोवास्कोशिया तथा न्यूब्रंजविक एक राज्य में मिले। पीछे सन् १८७१ ई० में ब्रिटिश कोलम्बिया भी इसी संघ में शामिल हो गया। न्यूफाउन्डलैंड इस संघ में शामिल नहीं हुआ। केनेडा की शासनपद्धति १८६७ के कानून के अनुसार है, उसमें पीछे समय-समय पर आवश्यक संशोधन हुए हैं। ये संशोधन सन् १९३१ तक ब्रिटिश पार्लिमेंट ने (केनेडा की सरकार की इच्छा के अनुसार) किए हैं। केनेडा का विधान सिद्धान्त से संघात्मक, कठिनाई से बदलने वाला, और लिखित है। इन बातों में यह संयुक्त राज्य अमरीका की शासनपद्धति से मिलता है; इंगलैंड से नहीं। परन्तु व्यवहार में केनेडा की शासनपद्धति ब्रिटिश शासनपद्धति की ही नकल है।

संघ-पार्लिमेंट—केनेडा की पार्लिमेंट की दो सभाएँ हैं:—(१) सिनेट और (२) कामन्स सभा। सिनेट में ९६ सदस्य होते हैं। ये केनेडा की सरकार की सिफ़ारिश पर इंगलैंड के बादशाह की ओर से, केनेडा के गवर्नर-जनरल द्वारा जन्म भर के लिए नामज़द किये जाते हैं; इसमें शर्त यह होती है कि उनकी उम्र ३० वर्ष से अधिक हो, वे विदेशी न हों, और उनमें से प्रत्येक के पास चार हज़ार डालर अर्थात्

लगभग बारह हजार रुपये की जायदाद हो। 'स्पीकर' (अध्यक्ष) को मिला कर १५ सदस्यों का 'कोरम' होता है।

केनेडा के जुदा-जुदा हिस्सों के लिए जानेवाले सदस्यों की संख्या कानून से निर्धारित है। गवर्नर-जनरल की सिफारिश से चार हिस्सों में से हरेक के एक-एक या दो-दो सदस्य और लिए जा सकते हैं। इस प्रकार सदस्यों में आठ तक वृद्धि हो सकती है। सिनेट के कुल सदस्यों की संख्या १०४ से अधिक नहीं हो सकती।

कामन्स-सभा की उम्र अकसर पाँच वर्ष होती है। यह जनता की चुनी हुई होती है, इसके सदस्यों के चुनाव के लिए हरेक बालिग स्त्री-पुरुष को मत देने का अधिकार है। इसके सदस्यों में से ६५ क्यूबेक प्रान्त के होते हैं। यह संख्या १९३१ की मनुष्य-गणना के आधार पर ४४,१९८ आदमियों के पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से, निश्चित की गयी थी। दूसरे प्रान्तों के प्रतिनिधियों की संख्या का जनता से यही अनुपात रहता है; और उनकी कुल संख्या प्रत्येक मनुष्य-गणना के बाद होनेवाले निर्वाचन में बदलती रहती है। सन् १९४५ में कामन्स-सभा के कुल सदस्य २४५ थे। सभा का कार्य चलाने के लिए 'स्पीकर' (अध्यक्ष) को मिलाकर कम-से-कम २० सदस्यों की हाज़िरी ज़रूरी है।

नीचे लिखे विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार सिर्फ संघ-पार्लिमेंट को है:—व्यापार और वाणिज्य, सार्वजनिक ऋण, कर (टेक्स) लगाना, डाक, सेना और देश-रक्षा, मुद्रा और टकसाल आदि। खेती और विदेशियों का इस राज्य में आना आदि कुछ विषयों का कानून बनाने का अधिकार संघ को भी है, और प्रान्तों को भी। संघ का बनाया कानून सब प्रान्तों में लागू होता है; और कोई प्रान्त इन विषयों के सम्बन्ध में उसी दशा में और उसी सीमा तक कानून बना सकता है जबकि वह संघ के कानून से बेमेल न हो।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—यहाँ के लिए गवर्नर-जनरल की नियुक्ति इंगलैंड के बादशाह द्वारा होती है। उसे अपने कार्य में प्रिवी कौंसिल से सहायता मिलती है। मंत्रिमंडल में प्रधान मंत्री के अलावा लगभग २० मंत्री होते हैं; इनमें से प्रायः एक विभागहीन होता है, शेष को अलग-अलग कार्य सौंपे जाते हैं। मंत्री अपने शासन-कार्य के लिए कामन्स-सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

प्रान्तीय शासन—केनेडा के नौ प्रान्तों में से हरेक में एक लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर रहता है, जो इस राज्य के गवर्नर-जनरल द्वारा, प्रबन्धकारिणी सभा की सलाह से, नियुक्त किया जाता है। आठ प्रान्तों में एक-एक, और एक (क्यूबेक) में दो व्यवस्थापक सभाएँ हैं। प्रान्तीय मंत्री अपने शासन-कार्य के लिए प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। प्रान्तीय सरकार उन्हीं अधिकारों का उपयोग कर सकती हैं, जो उसे केनेडा की केन्द्रीय सरकार द्वारा मिले हों। इस राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश और यूकोन प्रदेश का शासन कौंसिल-सहित कमिश्नर करते हैं।

नीचे लिखे विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार सिर्फ प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों को है:—प्रान्तीय शासनपद्धति का संशोधन (लेफ्टिनेंट-गवर्नर के पद के विषय को छोड़ कर), प्रान्तीय राजस्व, प्रान्तीय अधिकारियों की नियुक्ति और वेतन, प्रान्तीय न्यायालय, प्रान्त की सीमा के अन्दर की रेल, नहर, तार, सार्वजनिक भूमि की बिक्री, अस्पताल, आदि। गवर्नर-जनरल किसी प्रान्तीय कानून को रद्द कर सकता है, पर वह यह कार्य अपने मंत्रिमंडल की सलाह से करता है।

विधान में संशोधन कैसे हो सकता है?—केनेडा के प्रान्तों की शासनपद्धति के संशोधन का जिक्र ऊपर किया जा चुका है। सन् १६३१ तक संघ की शासनपद्धति के विषय में संघ-पार्लिमेंट कोई संशोधन नहीं कर सकती थी। ऐसा संशोधन ब्रिटिश पार्लिमेंट ही करती

थी, (वह यह कार्य केनेडा की पार्लिमेंट तथा जनता की इच्छा के अनुसार ही करती थी)। विधान में इस प्रकार का बन्धन होने का कारण यह था कि उसके बनाए जाने के समय यहाँ के केथलिक धर्मानुयायी फ्रांसीसियों को, अल्पसंख्यक होने के कारण, जातिगत आशंकाएँ थी। इसलिए केनेडा की पार्लिमेंट को विधान-संशोधन का अधिकार नहीं दिया गया था। सन् १६३१ से केनेडा की पार्लिमेंट स्वयं विधान का संशोधन कर सकती है।

(ख) दक्षिण अफ्रीका का यूनियन

दक्षिण अफ्रीका के यूनियन के चार भाग हैं:—(१) केप-आफ-गुड-होप या उत्तम-आशा अंतरीप, (२) नेटाल, (३) ट्रांसवाल, और (४) आरेंज फ्री स्टेट। इन चारों का क्षेत्रफल पौने पांच लाख वर्ग मील, और जनसंख्या एक करोड़ बारह लाख है; इनमें योरपियन सिर्फ २२ लाख हैं। यूनियन की राजधानी प्रोटोरिया है। [दक्षिण अफ्रीका में कई अन्य प्रदेश भी हैं; वे इस यूनियन में शामिल नहीं हैं।]

ऐतिहासिक परिचय—पन्द्रहवीं सदी के अंत में योरप वालों को उत्तमाशा अन्तरीप मालूम हुआ, तब से वे लोग दक्षिण अफ्रीका में जाने, और पीछे धीरे-धीरे वहाँ बसने लगे। सन् १६५० में उत्तमाशा अन्तरीप के पास डच लोगों की एक बस्ती बनी थी। सन् १७६५ ई० में इस पर अंगरेज़ों का अधिकार हो गया। डच लोग धीरे-धीरे अफ्रीका के भीतरी हिस्सों में नेटाल आदि नए उपनिवेश बसाते गए। ये डच लोग बोअर कहलाते हैं। इनकी नई जगहों में और विशेषकर नेटाल के मुख्य नगर डरबन में अंगरेज आ बसे। आखिर, सन् १८४४ ई० में नेटाल अंगरेजी राज्य में मिला लिया गया। तब अधिकांश बोअर लोगों ने पीछे हट कर आरेन्ज-फ्री-स्टेट और ट्रांसवाल के प्रजातंत्र राज्य कायम किए, परन्तु इंगलैंड उन पर अधिकार जमाने की कोशिश करता रहा। अन्त में आरेंज-फ्री-स्टेट सन् १८४८ में, और

नेटाल १६०२ में अंगरेजों के अधीन हो गया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका के चार उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर आ गए। सन् १६०६ ई० में आरेन्ज-फ्री-स्टेट तथा ट्रांसवाल को स्वराज्य मिल गया, और तीन वर्ष बाद सन् १६०६ में अन्तरीप उपनिवेश, नेटाल तथा उन दोनों राज्यों को मिलाकर एक सम्मिलित राज्य स्थापित किया गया। इसका नाम 'दक्षिण अफ्रीका का यूनियन' हुआ।

शासनपद्धति—इस यूनियन की शासनपद्धति सन १६०६ के दक्षिण-अफरीका-कानून के अनुसार है। इसे यहाँ के ही आदमियों ने आपस में सोच-विचार और वाद-विवाद करके तय किया था। ब्रिटिश पार्लिमेंट ने इसमें कुछ परिवर्तन किये बिना ही, इसे स्वीकार कर लिया था।

सन् १६०६ के बाद, समय-समय पर शासन-विधान में आवश्यकतानुसार संशोधन करते रहे हैं। संशोधन दक्षिण-अफरीका-यूनियन की पार्लिमेंट द्वारा ही किए जाते हैं।

यूनियन-पार्लिमेंट—यूनियन की पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं:—(१) सिनेट और (२) असेम्बली। इनके अधिवेशन केपटाउन में होते हैं। सिनेट की आयु दस वर्ष की होती है। इसमें चालीस सदस्य होते हैं इनमें से आठ को गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल नामज़द करती है; इन आठ सदस्यों में से चार खासकर इसलिए लिए जाते हैं कि उन्हें गैर-योरपियन जातियों की आवश्यकताओं और इच्छाओं का ज्ञान हो। शेष ३२ सदस्यों का निर्वाचन प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों की संयुक्त सभा द्वारा होता है। प्रत्येक प्रान्त का व्यवस्थापक मंडल आठ-आठ सिनेटरों (सिनेट के सदस्यों) का चुनाव करता है। योरपियन ब्रिटिश प्रजा के आदमी ही चुने जा सकते हैं। सदस्य बनने के लिए उम्मेदवार कम-से-कम तीस वर्ष का होना चाहिए, उनमें किसी प्रान्त के

निर्वाचक बनने की योग्यता होनी चाहिए। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह दक्षिण-अफ्रीका के यूनियन में पाँच वर्ष रहा हो, और उसके पास कम-से-कम पाँच सौ पौंड की जायदाद हो। कोरम बारह सदस्यों का होता है।

सन् १६३६ के नेटिव-प्रतिनिधित्व कानून से यह व्यवस्था की गयी कि सिनेट में चार सदस्य मूल निवासियों की ओर से चुने जाया करें, प्रत्येक प्रान्त का एक-एक प्रतिनिधि हो। इस तरह चुने हुये सिनेटरों का कार्य-काल पाँच-पाँच वर्ष होगा। उनमें उन्हीं योग्यताओं का होना आवश्यक है, जो दूसरे निर्वाचित प्रतिनिधियों में होती हैं।

असेम्बली में, १६३६ की मनुष्य-गणना के सम्बन्ध में नियुक्त कमीशन की सिफारिश के अनुसार, १५० सदस्य हैं; जिनमें प्रान्त के सदस्यों की संख्या इस प्रकार है—उत्तमाशा अन्तरीप ५६, नेटाल १६, ट्रान्सवाल ६०, आरेंज फ्री स्टेट १५। इक्कीस वर्ष से अधिक आयु के हरेक व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) को मताधिकार है। सदस्य योरपियन ब्रिटिश प्रजा के ही हो सकते हैं, जिनमें निर्वाचक की योग्यता हो, और जो यूनियन में पांच वर्ष रहे हों। असेम्बली की आयु पांच वर्ष होती है। केप के नेटिव निर्वाचकों को असेम्बली के लिए तीन अतिरिक्त सदस्य चुनने का अधिकार है, ये सदस्य पाँच वर्ष तक बने रहते हैं; चाहे इस बीच में असेम्बली भंग ही क्यों न हो जाय। असेम्बली में कोरम तीस सदस्यों का होता है।

दोनों सभाओं के हरेक सदस्य को राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ती है। एक सभा का सदस्य दूसरी सभा की सदस्यता के लिए निर्वाचित नहीं हो सकता। परन्तु मन्त्री उस सभा में भी उपस्थित हो सकता तथा भाषण दे सकता है, जिसका वह सदस्य न हो; हाँ, वह अपना मत उसी सभा में दे सकता है, जिसका वह सदस्य हो। नीचे लिखी बातों से आदमी मेम्बरी के लिए अयोग्य माने जाते हैं:—(१) कोई ऐसा सरकारी पद ग्रहण करना, जिससे आमदनी होती हो (इसमें कुछ

अपवाद हैं), (२) दिवालिया होना, (३) घोर अपराध, और (४) पागलपन।

धन सम्बन्धी कानूनी मसविदों का विचार असेम्बली में ही शुरू होता है; सीनेट उसमें परिवर्तन नहीं कर सकती। यदि असेम्बली में कोई कानूनी मसविदा दो बार स्वीकार हो जाय और सिनेट उसे अस्वीकार कर दे तो गवर्नर-जनरल उसे दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में पेश करेगा, और उसमें जो निर्णय होगा, उसके अनुसार कानून बनेगा।

सन् १६३६ के कानून के अनुसार एक नेटिव प्रतिनिधि कौंसिल बनायी जाती है, इसमें २२ सदस्य होते हैं :—छः सरकारी; चार नाम-जद, जो गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त हों; और बारह निर्वाचित, जिनमें से तीन-तीन सदस्य प्रत्येक प्रान्त के होते हैं। इस कौंसिल का कार्य नीचे लिखे विषयों का विचार करना और उन पर अपनी सम्मति देना है:—(१) कोई कानूनी मसविदा, जहाँ तक उसका सम्बन्ध नेटिव जनता (मूल निवासियों) से हो। (२) कोई विषय, जो मंत्री इस कौंसिल के पास भेजे। (३) कोई विषय, जिसका व्यापक रूप से नेटिव लोगों से सम्बन्ध हो।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—यूनियन का गवर्नर-जनरल इंगलैंड के बादशाह द्वारा नियुक्त होता है। उसका वेतन यूनियन के कोष से दिया जाता है। वह प्रबन्धकारिणी सभा की सलाह से काम करता है। उसमें, सन् १६४५ में, प्रधान मंत्री सहित १२ मंत्री थे, जिनमें से एक मंत्री नेटिव जनता सम्बन्धी विषयों के लिए था। मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा, पार्लिमेंट के सदस्यों में से, होती है। प्रधान मंत्री को ३५०० पौंड दूसरे मन्त्रियों को २५०० पौंड वार्षिक वेतन मिलता है।

प्रान्तीय शासन यूनियन के चारों प्रान्तों में एक-एक

एडमिनिस्ट्रेटर (शासक), एक-एक व्यवस्थापक परिषद, तथा एक-एक प्रबन्धकारिणी कमेटी होती है। प्रान्त का शासन एडमिनिस्ट्रेटर के नाम से होता है, उसे गवर्नर जनरल पाँच वर्ष के लिए नियुक्त करता है। व्यवस्थापक परिषदों की आयु पाँच-पाँच वर्ष होती है, वे अपना सभापति अपने सदस्यों में से निर्वाचित करती हैं। उनके सदस्यों की संख्या इस प्रकार है:—उत्तमाशा अन्तरीप ५८, नेटाल २५, ट्रांसवाल ६४, आरेंज-फ्री-स्टेट २५। इन सदस्यों का निर्वाचन उसी पद्धति से होता है, जैसे पार्लिमेंट के सदस्यों का; परन्तु यह प्रतिबन्ध नहीं है कि वे योरपियन ही हों। केप के नेटिव निर्वाचकों को प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद के लिए दो सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार है। प्रत्येक प्रान्तीय प्रबन्धकारिणी कमेटी में चार-चार मंत्री होते हैं, उसका सभापति एडमिनिस्ट्रेटर होता है। मंत्रियों का निर्वाचन व्यवस्थापक परिषदें करती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये मन्त्री अपने-अपने प्रान्त की व्यवस्थापक परिषद के सदस्य हों; उससे बाहर के भी आदमी मन्त्री चुने जा सकते हैं।

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदें अपने क्षेत्र सम्बन्धी ऐसे ही आर्डिनेन्स बना सकती हैं, जो यूनियन-पार्लिमेंट के कानून से बेमेल न हों। उनके आर्डिनेन्सों को गवर्नर-जनरल रद्द कर सकता है।

विधान में संशोधन कैसे हो सकता है?—यूनियन की पार्लिमेंट निर्धारित नियमों के अनुसार, विधान में संशोधन कर सकती है। संशोधन सम्बन्धी कानून का मसविदा पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में पास होना चाहिए; उसके तीसरे वाचन के समय दोनों सभाओं के कुल सदस्यों में से कम-से-कम दो-तिहाई उससे सहमत होने चाहिएँ।

(ग) आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया महाद्वीप अपने आकार में भारतवर्ष से भी बड़ा है।

इसका क्षेत्रफल लगभग तीस लाख वर्गमील है। परन्तु इसका अधिकांश भाग गैर-आबाद है, इसकी कुल जनसंख्या लगभग पिछत्तर लाख है। आस्ट्रेलिया छः प्रान्तों का मिलकर बना हुआ संघ है।

ऐतिहासिक परिचय—आस्ट्रेलिया के उत्तरी किनारे की खोज १६०६ में, सबसे पहले डच लोगों ने की थी। सतरहवीं सदी के अन्त में अँगरेज़ भी वहाँ गए। परन्तु सबने यही कहा कि भूमि बंजर है, और मूल निवासी झगड़ालू हैं। इसलिए बहुत समय तक खोज का काम बन्द रहा। इस बीच में डच लोगों की सामुद्रिक प्रभुता जाती रही। अन्त में केप्टेन कुक नामक अँगरेज १७६८ में वहाँ पूर्वी किनारे की ओर पहुँचा। उसने खबर दी कि यहाँ की भूमि उपजाऊ तथा बसाने योग्य है।

सन् १७८३ ई० में अमरीका के संयुक्त-राज्य कहे जानेवाले उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य से अलग हो गए थे। इस घटना से अँगरेजों का ध्यान आस्ट्रेलिया की तरफ खास तौर से गया। बात यह थी कि अब तक कैदी, या अपने देश से निकाले हुए अँगरेज, अमरीका भेज दिए जाते थे, पर अब वहाँ के लोगों ने उन्हें लेना अस्वीकार कर दिया। ये कैदी या निर्वासित व्यक्ति अकसर वे लोग होते थे, जो अपने स्वतन्त्र धार्मिक या राजनैतिक विचारों के कारण अपराधी समझे जाते थे। इन्हें रखने के लिए ब्रिटिश सरकार अब ऐसी भूमि चाहती थी, जो ऐसी उपजाऊ हो कि इन्हें खाने का सामान मिलने में कठिनाई न हो, और जो इतनी दूर हो कि ये वहाँ से जल्दी इंगलैंड न आसकें। ये दोनों बातें आस्ट्रेलिया में पूरी हो सकती थीं। इसलिए सन् १७८८ ई० में इन अपराधियों का जहाज यहाँ भेज दिया गया। इन्होंने इसे अपना देश समझा और ये उसकी उन्नति में लग गए। पीछे इनके आन्दोलन से, १८४० में इंगलैंड ने यहाँ दूसरे अपराधियों को भेजना बन्द कर दिया। इस समय के आसपास यहाँ सोने की खानें मिलजाने से देशोन्नति बहुत तेजी से हुई।

शासनपद्धति—धीरे-धीरे आस्ट्रेलिया के रहनेवाले योरपियनों ने उत्तरदायी शासन की माँग पेश की और उसके लिए आन्दोलन किया। सन् १८५१ ई० में—'न्यूसाउथवेल्स, विक्टोरिया, दक्षिण-आस्ट्रेलिया, और टसमानिया ने, जो अच्छी तरह संगठित होगए थे, मिलकर अपनी शासनपद्धति का मसविदा तैयार किया। ब्रिटिश पार्लिमेंट को इसे स्वीकार करना पड़ा। पीछे १८५६ में क्वीन्सलैंड को, और १८६० में पश्चिमी आस्ट्रेलिया को उत्तरदायी शासन दिया गया। पहले ये उपनिवेश सीमा आदि के लिए आपस में झगड़ा कर बैठते थे। अन्त में इन सबने एक संघ बना लिया और उसकी शासनपद्धति सन् १९०० ई० में ब्रिटिश पार्लिमेंट से स्वीकृत कराली। तब से यहाँ उस वर्ष के पार्लिमेंट के कानून के अनुसार, शासन होने लगा। उसके बाद समय-समय पर शासन-विधान में आवश्यकतानुसार संशोधन होते रहे हैं। संशोधन आस्ट्रेलिया की कामनवेल्थ की पार्लिमेंट के ही कानून द्वारा हुए हैं। विधान में इस बात की व्यवस्था है कि आस्ट्रेलिया के संघ में कोई नया प्रांत बन सके या शामिल किया जा सके।

संघ-पार्लिमेंट—पूरे आस्ट्रेलिया (कामनवेल्थ) सम्बन्धी कानून बनाने का अधिकार संघ-पार्लिमेंट को है। इसमें इंगलैंड के बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर-जनरल होता है। उसके अलावा पार्लिमेंट में दो सभाएँ हैं:—(१) सिनेट, और (२) प्रतिनिधि-सभा (हाउस-आफ़ रेप्रेज़ेंटेटिव्ज)। सिनेट में आस्ट्रेलिया के सब (छः) प्रान्तों में से हरेक के छः-छः, इस प्रकार कुल छत्तीस सदस्य होते हैं, जो छः वर्ष के लिए चुने जाते हैं। प्रान्त के करीब आधे सदस्यों का नया चुनाव हर तीसरे वर्ष होता है। सिनेट अपने सदस्यों में से एक को अपना सभापति निर्वाचित करती है। कोरम एक-तिहाई सदस्यों का होता है।

प्रतिनिधि-सभा में लगभग ७५ सदस्य होते हैं। आस्ट्रेलिया के हरेक प्रान्त के प्रतिनिधि, आबादी के अनुपात से, लिये जाते हैं।

आबादी में अन्तिम मनुष्य-गणना या मर्दुमशुमारी का विचार किया जाता है, और मूल निवासियों का हिसाब नहीं लगाया जाता। जो प्रान्त शुरू से ही शामिल हैं, उनमें से किसी के पाँच से कम प्रतिनिधि नहीं लिए जाते। प्रतिनिधि-सभा का नया संगठन करीब तीन साल बाद होता है। वह अपने एक सदस्य को सभापति चुनता है। कोरम एक-तिहाई सदस्यों का होता है।

पार्लिमेंट की दोनों सभाओं का हरेक सदस्य जन्म से ब्रिटिश प्रजा का आदमी होना चाहिए, अथवा उसे ब्रिटिश संयुक्त-राज्य या आस्ट्रेलिया के किसी प्रान्त की नागरिकता मिले कम-से-कम पाँच साल का समय हो जाना चाहिए। उसमें (वह पुरुष हो या स्त्री) बालिग होने के अलावा निर्वाचक होने की योग्यता होनी, और उसका आस्ट्रेलिया में तीन साल रह चुकना आवश्यक है। यदि संघ-पार्लिमेंट का कोई सदस्य आस्ट्रेलिया के किसी प्रान्त की पार्लिमेंट का मेम्बर हो तो उसे संघ-पार्लिमेंट में भाग लेने से पूर्व वह मेम्बरी छोड़ देनी-चाहिए। मूल निवासियों (नेटिव) को छोड़कर बाकी सब बालिग स्त्री-पुरुषों को मताधिकार है।

धन सम्बन्धी कानूनी मसविदों पर विचार करने का कार्य प्रतिनिधि-सभा में ही हो सकता है, सिनेट में नहीं। सिनेट उसमें कोई संशोधन नहीं कर सकती। यदि प्रतिनिधि-सभा किसी कानूनी मसविदे को दो बार स्वीकार करले और सिनेट उसे अस्वीकार करे तो गवर्नर-जनरल दोनों सभाओं को भंग कर सकता है। यदि नए निर्वाचन के बाद फिर भी प्रतिनिधि-सभा उस मसविदे को स्वीकार करे और सिनेट अस्वीकार, तो दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन होता है, और उसके निर्णय के अनुसार काम होता है।

संघ-पार्लिमेंट को खासकर नीचे लिखे विषयों के कानून बनाने का अधिकार है:—व्यापार, जहाज चलाना, राजस्व, मुद्रा, बैंकिंग, रक्षा, विदेशी सम्बन्धी विषय, डाक, तार, मर्दुमशुमारी, तोल, माप, रेल,

ऐसे औद्योगिक विषयों के झगड़े निपटाना जिनका क्षेत्र एक प्रान्त की सीमा से बाहर हो, और देश की हालत जाहिर करने वाले आंकड़े (स्टेटिस्टिक्स)। इन्हें छोड़कर, शेष सब विषयों के अपने-अपने क्षेत्र सम्बन्धी कानून बनाने का अधिकार प्रत्येक प्रान्त को है। अगर किसी प्रान्त का कोई कानून उस विषय के संघ-कानून से मेल न खाता हो, तो संघ का कानून मान्य होता है।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—आस्ट्रेलिया का गवर्नर-जनरल इंगलैंड के बादशाह द्वारा नियुक्त होता है। वह प्रबन्धकारिणी सभा की सलाह से काम करता है, जिसमें अकसर सात से ग्यारह तक मंत्री होते हैं। मंत्री प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों में से लिए जाते हैं, और उस सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

प्रान्तीय शासन—आस्ट्रेलिया में छः प्रान्त हैं। हरेक प्रान्त में बादशाह द्वारा नियुक्त एक गवर्नर रहता है, जो गवर्नर-जनरल के अधीन नहीं होता। क्वीन्सलैण्ड में एक ही व्यवस्थापक सभा है; इसे छोड़कर अन्य प्रान्तों में दो-दो व्यवस्थापक सभाएँ हैं, जिन्हें अपने-अपने प्रान्त के लिए कानून बनाने तथा कर या टैक्स लगाने का अधिकार है। मताधिकार प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को है।

इस शासनपद्धति की विशेषताएँ—यहाँ की शासनपद्धति की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ ये हैं:—

१—पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के निर्वाचन के लिए प्रत्येक बालिग पुरुष-स्त्री को मताधिकार है।

२—प्रान्तों के गवर्नर इंगलैंड के बादशाह द्वारा नियुक्त किए जाते हैं, और वे उससे सीधा सम्बन्ध रखते हैं।

३—संघ-सरकार को वे ही अधिकार प्राप्त हैं, जो उसे कानून द्वारा दिए गए हैं, शेष सब अधिकार प्रान्तीय सरकारों को प्राप्त हैं।

४—प्रबन्धकारिणी सभा पूरे तौर से प्रतिनिधि-सभा के प्रति

उत्तरदायी है।

५—शासनपद्धति को, यहाँ की पार्लिमेंट का बहुमत, अथवा प्रतिनिधि-सभा का बहुत भारी बहुमत होने पर, निर्वाचक आसानी से बदल सकते हैं।

विधान में परिवर्तन कैसे हो सकता है?—विधान-परिवर्तन सम्बन्धी कानूनी मसविदा पार्लिमेंट की दोनों सभाओं में साफ बहुमत से पास होना चाहिए। दोनों सभाओं द्वारा पास होने के कम-से-कम दो, और अधिक-से-अधिक छः महीने बाद उस पर हरेक प्रान्त के निर्वाचकों के मत लिए जायँगे। यदि उस मसविदे को कोई सभा दो बार स्वीकार करले और दूसरी सभा उसे अस्वीकार करे तो भी गवर्नर-जनरल उस मसविदे के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रान्त के निर्वाचकों का मत ले सकता है। यदि ज्यादातर प्रान्तों में निर्वाचकों का साफ बहुमत उस मसविदे के पक्ष में हो, और मत देनेवाले सब निर्वाचकों का भी बहुमत उसके पक्ष में हो तो गवर्नर-जनरल उस पर बादशाह की स्वीकृति लेता है, और वह कानून बन जाता है।

(घ) न्यूजीलैंड

इसमें दो द्वीप हैं—उत्तरी द्वीप और दक्षिणी द्वीप। यह आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पश्चिम में है। इसका क्षेत्रफल एक लाख वर्ग मील से अधिक है। मनुष्यगणना हर पांचवें साल होती है। सन् १९४४ की गणना के अनुसार यहाँ की आबादी १७ लाख है। यहाँ के मूल निवासी 'माओरी' कहलाते हैं, उनकी संख्या ९७,२९३ है।

ऐतिहासिक परिचय—योरपवालों को न्यूजीलैंड का पता सन् १६४२ में लगा था। इसके किनारे की विशेष खोज कप्तान कुक ने सन् १७६९ में की। सन् १८३० ई० में यहाँ योरपियन अच्छी संख्या में आगए। ये उत्तरी द्वीप में बस गए। १८३९ में फ्रांस वालों ने इस भूमि पर अधिकार करना चाहा, पर अंगरेज़ों ने बाजी मारली। ठीक

तरह बस जाने पर, यहाँ के योरपियनों ने स्वराज्य की माँग की। ब्रिटिश पार्लिमेंट ने सन् . १८५२ में यहाँ पार्लिमेंट स्थापित करने का कानून बनाया, और पीछे इस कानून में समय-समय पर संशोधन किया। आस्ट्रेलिया की भूमि से बहुत फासले पर स्थित होने के कारण, इस उपनिवेश ने उसके संघ में शामिल होना पसन्द नहीं किया; और अपनी शासनपद्धति अलग रखी। सन् १९०८ से न्यूज़ीलैंड की पार्लिमेंट खुद ही यहाँ के शासन-विधान में संशोधन करती है। विधान में ऐसी व्यवस्था है कि मूल निवासियों सम्बन्धी शासन-प्रबन्ध, तथा उनके आपसी व्यवहार में, उनके नियम तथा रीति-रिवाज का ध्यान रखा जाय. और, कुछ ऐसे ज़िले अलग रखे जायँ, जहाँ उनके नियम तथा रीति रिवाज का पालन हो। लेकिन मूल निवासियों की संख्या अब बहुत कम रह गई है।

पार्लिमेंट—यहाँ की पार्लिमेंट ('जनरल असेम्बली') में दो सभाएँ हैं:—(१) व्यवस्थापक परिषद् अर्थात् 'लेजिस्लेटिव कौंसिल, और (२) प्रतिनिधि-सभा अर्थात् 'हाउस-आफ-रेप्रेजेंटेटिव्स'। व्यवस्थापक परिषद् के सदस्यों की संख्या बदलती रहती है; ये हर सातवें वर्ष निर्वाचित होते हैं। सन् १९४५ में इनकी संख्या ३४ थी। उम्मेदवार बनने के लिए किसी जायदाद का रखना आवश्यक नहीं है।

प्रतिनिधि-सभा में ८० सदस्य होते हैं, जो सर्वसाधारण द्वारा तीन साल के लिए चुने जाते हैं। इनमें से चार माओरी होते हैं। सन् १९१९ से स्त्रियाँ भी सदस्य हो सकती हैं।

प्रत्येक पुरुष और स्त्री, जिसका नाम निर्वाचक-सूची में दर्ज हो, सदस्य बन सकती है। योरपियन सदस्यों के निर्वाचन के लिए वे लोग मतदाता होते हैं, जो विदेशी न हों, एक साल तक न्यूज़ीलैंड में, और तीन महीने निर्वाचन-जिले में रहे हों। कोई व्यक्ति एक से अधिक निर्वाचक-सूचियों में अपना नाम दर्ज नहीं करा सकता। माओरियों के चारों निर्वाचन-जिलों में प्रत्येक बालिग माओरी मत दे सकता है।

स्त्रियों को मताधिकार सन् १८६३ में मिला।

यदि गवर्नर-जनरल किसी विषय का कानून बनवाना चाहता है, तो वह उसका मसविदा पार्लिमेंट की किसी सभा में भेज सकता है। इस पर नियमानुसार विचार किया जाता है। जब पार्लिमेंट की दोनों सभाओं में किसी कानूनी मसविदे के सम्बन्ध में मतभेद होता है, तो गवर्नर-जनरल द्वारा दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन किया जाता है। गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह पार्लिमेंट द्वारा पास किये हुए किसी कानूनी मसविदे को स्वीकार करे या अस्वीकार करे अथवा उसे बादशाह की स्वीकृति के लिए रख छोड़े। वह उस मसविदे में आवश्यक संशोधन करके उसे फिर पार्लिमेंट की सभाओं के विचार के लिए भेज सकता है; ऐसा होने की दशा में सभाएँ उस पर नियमानुसार विचार करती हैं।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—गवर्नर जनरल बादशाह द्वारा नियुक्त होता है। वह बादशाह का ही नहीं, ब्रिटिश सरकार का भी प्रतिनिधि होता है। उसका संयुक्त पद गवर्नर-जनरल और कमांडरनचीफ है। वह आमतौर से प्रबन्धकारिणी सभा की सलाह से काम करता है। प्रबन्धकारिणी सभा में १२ मन्त्री होते हैं; वे अपने शासन-कार्य के लिए व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

* * *

उत्तरदायी शासनपद्धति—ब्रिटिश साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों की शासनपद्धतियों में कुछ-कुछ बातों में फरक है, लेकिन कई समानताएँ भी हैं; यथा हरेक प्रदेश में दो-दो व्यवस्थापक सभाएँ हैं, जिन्हें अकसर सिनेट और प्रतिनिधि-सभा कहा जाता है। धन सम्बन्धी कानूनी मसविदों के विषय में करीब-करीब पूरा अधिकार प्रतिनिधि-सभा को ही होता है। मंत्रिमण्डल भी इसी सभा के प्रति उत्तरदायी होता

है। प्रत्येक प्रदेश में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित है, इस शासन-पद्धति की मुख्य-मुख्य बातें ये हैं।

(१) शासन सम्बन्धी सब कार्य प्रधान शासक के नाम से किये जाते हैं। वह व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदाता नहीं होता, इसलिए वह उसके द्वारा हटाया भी नहीं जा सकता। इसे गवर्नर-जनरल, या गवर्नर कहते हैं।

(२) उसके कार्य मन्त्रियों की सलाह से, और उन्हीं की जिम्मेवरी पर होते हैं। मंत्री नाममात्र को उसके द्वारा, परन्तु असल में प्रजा प्रतिनिधियों द्वारा, आम तौर से व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों में से चुने जाते हैं।

(३) इस प्रकार प्रतिनिधि, अपने निर्वाचित मंत्रियों द्वारा, देश का असली शासन करनेवाले होते हैं।

(४) जब प्रतिनिधि-सभा का इन मंत्रियों पर विश्वास नहीं रहता, ये (यदि व्यवस्थापक मण्डल को बर्खास्त न करें) त्यागपत्र दे देते हैं, और उनके स्थान पर नये मन्त्री चुने जाते हैं।

(५) प्रबन्ध करने और कानून बनाने की शक्ति उस दल के हाथ में होती है, जिसका प्रतिनिधि-सभा में बहुमत हो।

(६) व्यवस्थापक मण्डल और मंत्रिमंडल अपनी मत-भेद की बातों को, न्याय-विभाग के सामने रखे बिना ही, तय कर लेते हैं।

* * *

संघ-शासनपद्धति—भिन्न-भिन्न भागों के शासन सम्बंधी अधिकारों के विचार से, केनेडा और आस्ट्रेलिया में जो शासनपद्धति प्रचलित है, उसे संघ ('फिडरल') शासनपद्धति कहते हैं। दक्षिण अफ्रीका के यूनियन की शासनपद्धति के भी कुछ लक्षण इसी से मिलते हैं। संघ-शासन वाले राज्य में सारी शासन-सत्ता एक केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं होती, बल्कि एक लिखित विधान के अनुसार, केन्द्रीय

सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों में बटी होती है। व्यापार, युद्ध, सिक्का आदि जिन बातों का सम्बन्ध सारे राज्य से हो, उनके बारे में नियम बनाने का अधिकार केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल को होता है, और उनको अमल में लाने का काम केन्द्रीय सरकार करती है। प्रान्तीय सरकारें अपने-अपने प्रान्त के विषयों में—मिसाल के तौर पर धर्म, शिक्षा, उद्योग-धंधों आदि के सम्बन्ध में—स्वाधीन रहती हैं। कुछ विषय ऐसे भी होते हैं जिनके सम्बन्ध में अधिकार केन्द्रीय एवं प्रान्तीय दोनों सरकारों को होते हैं। इन सरकारों के अधिकारों की सीमा का निर्णय करने के लिए एक प्रधान न्यायालय रहता है, जिसे संघ-न्यायालय कहा जाता है। संघ-विधान, संघ में शामिल होनेवाले राज्यों का एक तरह का संधि-पत्र होता है, जिसके अनुसार वे अपने कुछ अधिकारों को अपने अधीन रखते हैं, और कुछ को केन्द्रीय सत्ता के सुपुर्द कर देते हैं।

[इसके खिलाफ, एकात्मक ('यूनीटरी') शासनपद्धति वाले राज्यों में सब शासन-सत्ता केन्द्रीय सरकार के अधीन होती है। यदि वह उचित समझे तो अपने कुछ अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दे सकती है। केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारों के अधिकार घटाने-बढ़ाने एवं उनकी संस्था या सीमा में भी परिवर्तन करने का अधिकार होता है। ग्रेट-ब्रिटेन आदि देशों में यह पद्धति प्रचलित है।]

अठारहवाँ परिच्छेद

भारत और राष्ट्रमण्डल

"लन्दन समझौता अहिन्सा का चमत्कार है। गांधी जी ने हमें बताया है कि दुश्मन से दोस्ती किस प्रकार की जाती है, वह भी दुश्मनी भूलकर !"
—डा० राजेन्द्रप्रसाद

[भारत की शासनपद्धति का वर्णन हमारी 'भारतीय शासन' पुस्तक में किया गया है, जिसका अब नया (दसवां) संस्करण प्रकाशित हो रहा है। यहाँ इस अध्याय में हम केवल इस बात का विचार करेंगे कि भारत स्वतंत्र प्रजातंत्र होजाने पर राष्ट्रमंडल का सदस्य क्यों रहा, तथा इस विषय की उपस्थित समस्याएँ किस प्रकार हल की गईं।]

पहले कहा जा चुका है कि प्रथम योरपीय महायुद्ध के समय से ही ब्रिटिश साम्राज्य को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल कहा जाने लगा था, पर इस से साम्राज्य-सूत्रधारों की रंगदार जातियों के प्रति बर्ती जानेवाली नीति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। अफरीका और एशिया के लिए वे साम्राज्यवादी ही बने रहे। एक-एक करोड़ से भी कम आबादी वाले गोरे उपनिवेश तो ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के स्वतंत्र राष्ट्र माने गए, पर उनतालीस करोड़ जनसंख्या वाले भारत को वैसा पद नहीं दिया गया। भारत के लिए ब्रिटिश साम्राज्य का नाम बदल कर ब्रिटिश राष्ट्रमंडल हो जाने का कोई महत्व नहीं था।

इंगलैंड और दूसरा महायुद्ध—दूसरा योरपीय महायुद्ध आया, पुनर्निर्माण की बातें चलीं। विश्व-सुरक्षा-सम्मेलन में बड़ी-बड़ी योजनाएँ

बनीं। पर इंगलैंड तथा अन्य बड़े-बड़े राष्ट्रों की उदारता वहीं तक रही, जहाँ तक उनके स्वार्थ में कोई बाधा न हुई, उन्हें किसी प्रकार का त्याग न करना पड़े। ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्री चर्चिल ने महायुद्ध के जोर से चलने के समय भी साफ-साफ कह दिया था कि मैं साम्राज्य का अन्त करने के लिए सम्राट का मन्त्री नहीं बना हूँ। पर समय बदलता रहता है। उसकी नकेल सदा किसी चर्चिल आदि के हाथ में नहीं रहती। सन् १९४५ के ब्रिटिश चुनाव में महायुद्ध के समय के नेता चर्चिल का दल मंत्रिमंडल बनाने में असफल रहा; शासन सत्ता मजदूर दल के हाथ में चली गई। महायुद्ध ने इंगलैंड को दूसरी श्रेणी का भी राष्ट्र नहीं रहने दिया।

भारत की स्वाधीनता—इधर भारत अपना स्वातंत्र्य-संग्राम सन् १८५७ से चलाए जा रहा था। सन् १८८५ से यहाँ कांग्रेस द्वारा और सन् १९१९ से अहिंसावतार म० गांधी के नेतृत्व में कार्य होने लगा। भावुक देश-भक्तों ने आतंक-मार्ग पर चल कर अनोखे बलिदान का परिचय दिया। सन् १९४२ में अभूतपूर्व जनक्रान्ति हुई। इसी समय आजाद हिन्द आन्दोलन से नेताजी श्री सुभाषबोस ने देश को आजाद करने का बीड़ा उठाया। स्वतंत्रता की भावना नागरिक जनता तक ही सीमित न रही, उसने सैनिकों में प्रवेश करके ब्रिटिश साम्राज्य को गहरा धक्का पहुँचाया। साम्राज्य-सूत्रधारों में से जो कुछ सोचने-समझने वाले थे, उन्होंने जान लिया कि अब भारत पर अधिक समय तक हकूमत नहीं की जा सकती। आखिर अगस्त १९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ।* हाँ, ब्रिटिश कूटनीतिज्ञता ने यहाँ के सम्प्रदायवाद का लाभ उठाकर इसे खंडित कर डाला, इसके एक हिस्से को पाकिस्तान नाम से अलग राज्य बनने दिया।

के **स्वाधीन भारत और राष्ट्रमंडल**—पराधीन भारत को ब्रिटिश साम्राज्य में और पीछे ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में यथेष्ट स्थान प्राप्त

* देखिए, हमारी 'भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन; १८५७-१९४७'

नहीं था। पर स्वाधीन भारत की अवहेलना नहीं की जा सकी, खासकर इसलिए कि इसमें एशिया का नेतृत्व करने की क्षमता है। इंगलैंड इसे अपने संगठन में मिलाने के लिए लालायित हुआ। पर भारत ऐसे संगठन में कैसे शामिल हो, जिसका नाम ही ब्रिटिश विशेषण वाला होने से इंगलैंड की प्रमुखता सूचित कर रहा हो। इस विषय में विचार किया जाने लगा। आखिर, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, अक्तूबर १६४८ में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के राज्यों के प्रधान मंत्रियों ने एक सम्मेलन करके निश्चय किया कि 'ब्रिटिश राष्ट्रमंडल' में से 'ब्रिटिश' शब्द निकाल दिया जाय और भविष्य में इसे केवल राष्ट्रमंडल कहा जाय। इस नाम-परिवर्तन में उद्देश्य यही था कि राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत आनेवाले सभी राज्यों का पद बराबरी का है। उसमें ब्रिटिश राष्ट्र (इंगलैंड) और उसके उपनिवेशों की प्रमुखता या अगुआपन की भावना न रहे। सभी राज्य पूर्ण समानता के आधार पर एक दूसरे से सहयोग की भावना के साथ मिले-जुले और एकत्र रहें।

बादशाह से सम्बन्ध—भारत के, राष्ट्रमंडल का सदस्य बनने में एक बाधा और भी थी। वह अपनी विधान सभा द्वारा स्वतंत्र प्रजातंत्र होने का निश्चय कर चुका था। प्रश्न यह था कि वह राष्ट्रमंडल से किस प्रकार सम्बन्धित हो, जब कि इस संस्था के प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र को (इंगलैंड के) बादशाह की अधीनता स्वीकार करना और उसके प्रति वफादार होना अनिवार्य हो। राष्ट्रमंडल के अन्य राज्यों में कोई ऐसा (प्रजातंत्र) नहीं है, जिसे ब्रिटिश बादशाह की सत्ता के प्रति भक्ति स्वीकार करने में आपत्ति हो। इसलिए अप्रैल १६४६ में राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्रियों का जो सम्मेलन हुआ, उसके सामने मुख्य समस्या यह थी कि किस प्रकार स्वतंत्र प्रजातंत्र भारत की राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत संगति बैठाई जाय। आखिर, इस समस्या का हल निकल आया। भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू जी की व्यावहारिक बुद्धि तथा राष्ट्रमंडल के अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों की भारत को

अपने संगठन में रखने की प्रबल इच्छा से ही यह सम्भव हुआ। यह निश्चय किया गया कि बादशाह राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत राज्यों के स्वतंत्र सहयोग का प्रतीक मात्र रहें, भारत के किसी आन्तरिक या वैदेशिक विषय से उसका कोई सम्बन्ध न रहे।

राष्ट्रमंडल समझौता- -इस विषय में जो सरकारी घोषणा लन्दन और देहली से प्रकाशित हुई, उसका मुख्य अंश इस प्रकार है:—

"राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य-देशों की सरकारें, जिनकी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता का आधार नहीं बदला है, इस घोषणा की शर्तों के अनुसार भारत को राष्ट्रमण्डल का सदस्य रखना स्वीकार करती हैं।

"ब्रिटेन, कैनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान व लंका की सरकारें यह घोषणा करती हैं कि वे राष्ट्रमण्डल के स्वतन्त्र व समान सदस्यों के रूप में संगठित रहेंगी और शान्ति, स्वतन्त्रता व उन्नति के लिए एक-दूसरे के साथ सहयोग करते रहेंगे।

भारत को व्यापारिक मामलों में विशेष सुविधाएँ मिलती रहेंगी।

उपनिवेश (डोमीनियन) शब्द को अब सदा के लिए हटा दिया जाएगा।

राष्ट्रमण्डल में भारतीय नागरिकों को वे सब अधिकार मिलते रहेंगे, जो उन्हें इस समय प्राप्त हैं।

जनतन्त्र बन जाने पर भारत में ब्रिटिश राजा के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर-जनरल का पद समाप्त हो जाएगा।

इस घोषणा को पूर्ण अमली रूप दिया जाने के लिए राष्ट्रमण्डलीय देशों में कानून बनाने की आवश्यकता नहीं होगी।

इस घोषणा के समय ब्रिटिश मंत्रिमंडल इस समझौते को स्वीकार कर चुका था। पीछे ब्रिटिश पार्लिमेंट तथा अन्य सदस्य राज्यों ने इसे स्वीकार किया। भारत में यहाँ की विधान सभा तथा कांग्रेस ने इसको

स्वीकृति ली गई, जो यहाँ की जनता की सर्वाधिक प्रतिनिधि संस्थाएँ हैं।

भारत राष्ट्रमंडल में क्यों रहा?—यह ठीक है कि सन् १९३० में ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत रहने के विचार का परित्याग करते हुए नेहरू जी की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था, पर पीछे परिस्थितियों में महान अन्तर हो गया। उस समय यह कल्पना नहीं की जा सकती थी कि कोई राष्ट्र पूर्ण स्वाधीन होकर भी (ब्रिटिश) राष्ट्रमंडल में रह सकेगा। फिर, सन् १९४७ में जिस तरह अंगरेज स्वेच्छापूर्वक और शान्ति के साथ शासनाधिकार हस्तान्तरित करके भारत से हट गए, उससे पहले की कटुता और क्षोभ कुछ कम हो गया। इसके अतिरिक्त साम्यवाद का वेग दक्षिण-पूर्वी एशिया में जिस भयंकर रूप से बढ़ रहा है और भारत को सम्पन्न और शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के लिए पूर्ण औद्योगीकरण की जो आवश्यकता अनुभव की जा रही है उस पर विचार रखते हुए हमारी राष्ट्रीय महासभा, राष्ट्रीय सरकार तथा चोटी के नेताओं ने ब्रिटेन तथा राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों के साथ सहयोग करना स्वीकार किया।

कुछ शंकाओं का समाधान—राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के विरुद्ध यहाँ खासकर समाजवादियों की आलोचना बहुत गम्भीर रही है। विचार करने के मुख्य प्रश्न ये हैं कि क्या राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से भारत की किसी भी प्रकार की कुछ हानि हुई है, क्या उससे देश की भीतरी या बाहरी स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबन्ध लगता है, और क्या इससे भारत की राजनैतिक गुटों से अलग रहकर विश्व-शान्ति का प्रयत्न करने में कुछ बाधा पहुँचती है। प्रधान मन्त्री श्री० नेहरू जी ने समय-समय पर इन शंकाओं का समाधान किया है। आपका कथन है कि हमने पूर्ण स्वतन्त्रता की जो प्रतिज्ञा ली थी, उसका तत्वतः पालन किया गया है, और भारत के सम्मान और हितों को कोई हानि नहीं पहुँची है। हमने न कोई गुप्त समझौता किया है, और न कोई ऐसी जिम्मेदारी

स्वीकार की है, जिससे राजनैतिक, आर्थिक या सैनिक क्षेत्र में भारत की सार्वभौमिकता या उसकी स्वतन्त्र भीतरी या बाहरी नीति पर किसी तरह का आघात होता हो। भारत सदा पीड़ित जनता की सहायता और जातीय भेद-भाव का विरोध करेगा, और जब भी आवश्यक समझेगा राष्ट्र-मंडल से अलग हो जायगा।

कुछ सज्जनों का मत है कि भारत को राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने की अपेक्षा इंगलैंड से सन्धि करना अच्छा रहता। इस विषय में राजनैतिक क्षेत्रों का विचार है कि इंगलैंड से लिखित सन्धि करने में हानि ही होती। वर्तमान अलिखित सम्बन्ध में लाभ यह है कि अब राष्ट्रमण्डल के सदस्य-राष्ट्र, खासकर इंगलैंड, भारत की जितनी सहायता करना चाहें कर सकते हैं, और इससे जितनी सहायता लेना चाहें ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे एक-दूसरे से एक सीमा तक भिन्न परराष्ट्रनीति का अनुसरण कर सकते हैं।

राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के विरुद्ध यह भी कहा जाता है कि दक्षिण अफ्रीका आदि में वर्ण-विद्वेष की नीति बर्ती जाती है, और भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार किया जाता है। इसका उत्तर यह है कि राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने से हम अपने प्रवासी भाइयों के हितों की अवहेलना नहीं कर रहे हैं; सम्भव है, अब राष्ट्रमण्डल के सदस्य-राष्ट्रों पर अधिक प्रभाव डाला जा सके और उनके वर्ण-विद्वेष को हटाने में अधिक सफलता मिले।

विशेष वक्तव्य—भारत ने राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वीकार करके इस बात का आदर्श उपस्थित किया है कि कोई राष्ट्र स्वतन्त्र प्रजातंत्र रहते हुए भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य बन सकता है। इससे राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य-राष्ट्रों के प्रजातंत्र होने का मार्ग प्रशस्त हो गया है, वे भारत का अनुकरण कर सकते हैं। हमें भारतीय प्रजातंत्र की शक्ति-विकास और उन्नति में विश्वास रखना चाहिए। विश्व-राजनीति में भारत की स्थिति जल्दी ही कुछ-से-कुछ होनेवाली है। वह

संसार के दो तीन बड़े राष्ट्रों में गिना जायगा। स्वतंत्र प्रजातंत्र भारत में अपना उत्थान करने की असीम क्षमता है। वह अपने नैतिक और आध्यात्मिक बल से अन्य राज्यों का पथ-प्रदर्शन करेगा। हमें आत्म-विश्वास और दृढ़ता से काम लेना चाहिए।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

पाकिस्तान

पाकिस्तान की स्थापना—पाकिस्तान राज्य का निर्माण साम्प्रदायिकता के आधार पर हुआ है। इसके संस्थापक श्री जिन्ना की मान्यता थी कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं। उनके साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को ब्रिटिश कूटनीति ने बल दिया और सफल बनाया। इस प्रकार अगस्त १९४७ से भारत के स्वतन्त्र होने के साथ ही उसका मुस्लिम बहुसंख्यक भाग जुदा किया जाकर 'पाकिस्तान' नाम का एक अलग राज्य बनाया गया। इस तरह इस पुस्तक के छपते समय यह राज्य पूरे दो वर्ष का भी नहीं है।

इस राज्य के भाग, क्षेत्रफल, और जनसंख्या—पाकिस्तान के दो भाग हैं। पूर्वी भाग में पूर्वी बंगाल का प्रान्त और सिलहट ज़िले का अधिकाँश भाग है। मुख्य पाकिस्तान पश्चिम में है। इसमें पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त तथा इस ओर की रियासतें हैं। कुल पाकिस्तान का क्षेत्रफल ३ लाख ६१ हजार वर्गमील और आबादी लगभग साढ़े छः करोड़ है।

राज्य का आधार, इस्लाम—इस राज्य का विधान कराची में विधान-परिषद द्वारा बनाया जा रहा है। उसकी विशेष बातें अभी ज्ञात नहीं हुई। तथापि यह निश्चित सा है कि यह राज्य इस्लाम पर आधारित होगा। ७ मार्च १९४९ को यहाँ के प्रधान मंत्री ने उक्त

परिषद् में एक उद्देश्य प्रस्ताव रखा था, जिसमें कहा गया था कि पाकिस्तान एक स्वतंत्र सार्वभौम संघीय राज्य बनेगा। इसमें जन प्रतिनिधियों की इच्छा ही अधिकार और शक्ति का निर्णय करेगी तथा इस्लाम के आधार पर जनतन्त्र, स्वातन्त्र्य, समानता, सहिष्णुता और सामाजिक समता पूर्ण रूप से मानी जायगी। यहाँ प्रत्येक मुसलमान व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूप में अपने धर्म और मान्यताओं का पालन करेगा तथा यहाँ अल्प संख्यकों को भी अपने धर्मों और मान्यताओं को निभाने का अवसर दिया जायगा।

शासनपद्धति सम्बन्धी अन्य बातें--उक्त प्रस्ताव में आगे कहा गया है कि पाकिस्तान रियासतों और प्रान्तों का एक संघ होगा। जहाँ पर बुनियादी अधिकार, समानस्तर, कानून संरक्षण, सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा विचारने, कहने, मानने, लिखने, विश्वास करने, पूजने और संगठन करने की कानूनी और नैतिक मर्यादा में छूट होगी।

प्रस्ताव में आगे कहा गया है कि राज्य में अल्पसंख्यकों, पिछड़ी और दलित श्रेणियों को उचित अधिकार देने की व्यवस्था होगी। यहाँ पर न्याय को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी और हर संभव उपाय से राज्य की रक्षा की जायगी जिससे कि पाकिस्तान की जनता सुखी और समृद्धिशाली बने तथा मानवता की खुशहाली के साथ पाकिस्तान का विश्व के तमाम राष्ट्रों में सम्मानपूर्ण स्थान हो।

राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध—पाकिस्तान राष्ट्रमंडल का सदस्य-राष्ट्र है, और इसका ब्रिटिश सरकार से वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा राष्ट्रमंडल के किसी स्वराज्य प्राप्त उपनिवेश का है। यह इंगलैंड के प्रति राजभक्ति या वफादारी रखता है।

'धार्मिक' शासन-व्यवस्था—ऊपर कहा गया है कि पाकिस्तान एक 'धार्मिक' राज्य है। धार्मिक शासन-व्यवस्था अब पुराने ज़माने की

चीज़ हो गई है। आजकल यातायात के या आमदरफ़्त के साधनों की वृद्धि होने से प्रत्येक राज्य में कई-कई धर्मों या जातियों के आदमी रहते हैं। उन्हें किसी खास धर्म को मान्यता देने वाले राज्य में रहना रुचिकर या सुविधाजनक नहीं होता। इसलिए संसार में अब प्रायः लौकिक राज्यपद्धति ही चालू है

'धार्मिक' राज्य में अल्पसंख्यक समाज के नागरिक अधिकारों की रक्षा की बात चाहे जितनी कही जाय, व्यवहार में वह बहुत कम ही हो पाती है। इस प्रकार अल्पसंख्यक नागरिकों को बहुत असुविधाएँ और कष्ट रहते हैं। पाकिस्तान में गैर-मुस्लिमों के साथ जैसा बर्ताव हुआ है और होता है, उसका भारत को काफी कटु अनुभव है। बात यहाँ तक बढ़ी कि अब खासकर पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दुओं की संख्या बहुत ही कम रह गई। सिक्खों का तो वहाँ रहना असम्भव ही हो रहा है।

प्रश्न केवल गैर-मुसलिमों का ही नहीं है। पठान भी बहुत असन्तुष्ट हैं। वे खान अब्दुलगफ्फार खां के नेतृत्व में एक पठानिस्तान की माँग कर रहे हैं। विभाजन के नायक श्री जिन्ना का पुजारी पाकिस्तान अपने अन्दर इस प्रकार विभाजन कहाँ तक पसन्द करेगा, यह समय बताएगा। अभी तो उसने इस माँग के जवाब में बादशाह खान को कैद कर रखा है। पर इससे आन्दोलन शान्त होने वाला नहीं। सम्प्रदायवाद की प्रतिक्रिया सम्प्रदायवाद में होना स्वाभाविक ही है। साम्प्रदायिक कलह न बढ़ने देने का उपाय यही है कि पाकिस्तान एक लौकिक राज्य बने, सब धर्मों का समान रूप से मान करे, और अपने नागरिकों में जाति या धर्म के आधार पर भेद-भाव न करे।

समाजवाद या सम्प्रदायवाद—हाल में प्रधान मंत्री लियाकत-कत अली खां ने यह घोषणा की है कि पाकिस्तान में एक समाजवादी प्रयोग हो रहा है। मालूम होता है कि पाकिस्तान जहाँ अपनी कृति और व्यवहार में 'धार्मिक' राज्य होकर संसार के मुसलिम राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है, वह उसके साथ केवल कुछ जबानी

जमाखर्च करके संसार के समाजवादियों को प्रसन्न करने का अभिलाषी है। पर दुनिया इतनी भोली नहीं। पाकिस्तान की उक्त घोषणा की निस्सारता साफ़ ज़ाहिर है। समाजवाद और सम्प्रदायवाद में कभी मेल नहीं हो सकता। समाजवादी तो व्यक्तिमात्र की उन्नति का इच्छुक होता है, जबकि सम्प्रदायवादी अपने ही सम्प्रदाय वालों के हित की बात सोचता है, चाहे उससे दूसरों की कितनी हानि क्यों न हो। हमें बहुत प्रसन्नता होगी, यदि पाकिस्तान में सर्वोदय की भावना हो, और वह समाजवाद की ओर अग्रसर हो, पर इसके लिये अधिकारियों को स्वार्थ-त्याग करना होगा, कोरी बातों से काम नहीं चलेगा।

पाकिस्तान और भारत—पाकिस्तान के निर्माण के समय यहाँ के नेताओं ने सम्प्रदायवाद की लहर में भारत से जिस क्रूरता का व्यवहार किया, उसका वर्णन करना हमें अभीष्ट नहीं है। खेद है कि उसके बाद भी उनकी मनोवृत्ति में यथेष्ट सुधार नहीं हुआ। उन्होंने पाकिस्तान के नागरिकों को भारत के विरुद्ध भड़काया, कबायलियों की आड़ में कश्मीर पर चढ़ाई कर दी। (यह मामला अभी तक संयुक्त राष्ट्र-संघ के सामने है), हैदराबाद में विरोधी तत्वों को उत्तेजना दी और विदेशों में भारत की झूठी निन्दा की। पाकिस्तान राज्य अभी दो वर्ष का बालक है, और बचपन के ऐसे संस्कार किसी के लिए अन्ततः अनिष्ट-कारी ही होते हैं। पाकिस्तान के शुभचिन्तकों को चाहिए कि राज्य की उन्नति में जुट जायँ, और इसके लिए एक आवश्यक कार्य यह है कि अपने पड़ोसी भारत को मित्रता और सहयोग का परिचय दें। प्रकृति ने भारत को एक बनाया था, पर साम्प्रदायिकता और कूटनीति ने उसे खंडित कर दिया। हम स्मरण रखें कि वर्तमान भारत और पाकिस्तान के पारस्परिक हित एक दूसरे से मिले हुए हैं, खासकर खेती की पैदावार, आबपाशी उद्योग-धन्धों तथा रक्षात्मक कार्यों में एक दूसरे का सहायक और पूरक होने की आवश्यकता है। आशा है दोनों राज्यों के अधिकारी इस दिशा में अपने उचित कर्तव्य का पालन करेंगे।

बीसवाँ परिच्छेद

लंका

साधारण परिचय—लंका का बहुत प्राचीन काल से भारत-वर्ष से गहरा सम्बन्ध रहा है। दोनों की संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज आदि में बहुत समानता है। यहाँ के अधिकांश निवासी बौद्ध धर्मानुयायी हैं। यहाँ की भूमि की पैदावार बढ़ाने में दक्षिण-भारत वालों का बड़ा भाग रहा है। योरपियनों में सबसे पहले पुर्तगाल वालों ने सन् १५०५ में इसका पता लगाया। अगली सदी के मध्य में इसे हालैंड वालों ने ले लिया। अठारहवीं सदी में यहाँ अँगरेजों का अधिकार हुआ। सन् १७९६ में यह मदरास प्रान्त की सरकार के अधीन किया गया था। पीछे सन् १८०२ में इसे भारतवर्ष से जुदा कर दिया गया। इसका क्षेत्रफल २५,३३२ वर्ग मील, और जनसंख्या लगभग चौसठ लाख है।

शासन-विकास—अँगरेजों की अमलदारी के आरम्भ में लंका का शासन एक राजकीय उपनिवेश (क्राउन कालोनी) की तरह होता था। इसके लिए बादशाह अपने आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा आवश्यक कानून बना सकता था, और यहाँ के गवर्नर को अपने उपनिवेश मंत्री के परामर्श के अनुसार नियत करता था। सन् १९१४-१८ के योरपीय महायुद्ध के समय भारतवर्ष की भाँति यहाँ भी शासन-सुधार का आन्दोलन हुआ। यहाँ की नेशनल कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के प्रयत्न से सन् १९२२ में यहाँ व्यवस्थापक सभा में निर्वाचित सदस्यों की अधिकता होने लगी, यद्यपि कानून बनाने और शासन करने का सर्वोच्च अधिकार गवर्नर को

ही रहा। पीछे लार्ड डोनोमोर की अधीनता में एक कमीशन द्वारा जाँच होने पर सन् १९३१ में शासनपद्धति में परिवर्तन हुआ।

इस समय से शासन-प्रबन्ध एक गवर्नर के हाथ में रहने लगा। उसकी सहायता के लिए एक स्टेट-कौंसिल या राजपरिषद् होता था जिसे कानून बनाने तथा प्रबन्ध करने दोनों प्रकार के अधिकार थे। इसमें पचास सदस्य निर्वाचित होते थे, और आठ नामज़द। इनके अलावा इसमें तीन राज्याधिकारी भी बैठते थे:—चीफ सेक्रेटरी, लीगल (कानून-) सेक्रेटरी और फाइनेन्स (राजस्व) सेक्रेटरी।

शासन के विविध विभागों का कार्य सात मंत्रियों और तीन राज्याधिकारियों में बंटा होता था। मंत्रियों को राजपरिषद् के सदस्यों में से चुना जाता था। प्रत्येक मन्त्री के सभापतित्व में राजपरिषद् की एक स्थायी प्रबन्धकारिणी कमेटी होती थी। कमेटियाँ अपना-अपना सभापति खुद चुनती थीं; ये सभापति गवर्नर द्वारा, एक-एक विभाग के, मंत्री नामजद किए जाते थे। राजपरिषद् के सदस्यों के चुनाव के लिए निर्धारित योग्यता वाले प्रत्येक बालिग स्त्री तथा पुरुष को मताधिकार था। सदस्यों के लिए अँगरेजी भाषा में बोलने, पढ़ने और लिखने की भी योग्यता का होना आवश्यक था।

गवर्नर को अधिकार था कि वह चाहे जिस विभाग का प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले। उसे कानून बनाने का तथा बनवाने का भी बहुत अधिकार था। बादशाह को अधिकार था कि आर्डर-इन-कौंसिल के द्वारा यहाँ की शासनपद्धति में परिवर्तन करे, या कोई नया कानून बनाये।

लंका की स्वाधीनता—राजपरिषद् की माँग थी कि राज्याधिकारी कानून बनाने में हिस्सा न लें; बादशाह के अधिकार तथा गवर्नर के विशेषाधिकार हटा दिये जाएँ और राजस्व सम्बन्धी पूर्णाधिकार कौंसिल के हाथ में रहें। मई १९४३ में ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि लङ्का उपनिवेश अपना विधान स्वयं बना सकता है। इस पर

लंका वाले अपना विधान बनाने लग गये। इस बीच में ब्रिटिश सरकार ने एक कमीशन (सोलबरी कमीशन) इसलिए नियत कर दिया कि लंका में जो तरह-तरह के स्वार्थ या हित हैं, उन्हें ध्यान में रखकर लंकावालों को अपना विधान बनाने में सलाह-मशविरा दे। लंका वालों को यह बात नापसन्द थी। वे समझ गये कि कमीशन का उद्देश्य यह है कि अँगरेजों के हाथ में जो वहाँ के चाय और रबड़ आदि का व्यापार है, उसे उन्हीं के लिए सुरक्षित रखा जाय। नवम्बर १९४४ में राजपरिषद ने 'आजाद लंका' (फ्री लंका) बिल पास किया; उसका मतलब यह था कि लंका को स्वाधीन उपनिवेश (डोमिनियन) बना दिया जाय। ब्रिटिश उपनिवेश-मंत्री ने उस प्रस्ताव को बादशाह की मंजूरी के लिए नहीं रखा; इसका कारण उन्होंने यह बतलाया कि प्रस्ताव में ब्रिटिश सरकार के सूचित किए हुए संरक्षणों का विचार नहीं रखा गया है। इसपर राजपरिषद ने बहुत विरोध और असन्तोष जाहिर किया; कारण, इससे लंका के लोगों का आजादी के साथ अपना विधान बनाने का हक़ मारा जाता था।

अक्तूबर १९४५ में लंका को सोलबरी-कमीशन द्वारा प्रस्तावित, इंगलैंड की शासन पद्धति के ढांचे पर, नया विधान प्राप्त हुआ। नवम्बर में राजपरिषद ने उसे स्वीकार कर लिया। अब लंका स्वाधीन है। शासन प्रबन्ध के लिए यह नौ प्रान्तों में विभक्त है। प्रत्येक प्रान्त में एक सरकारी एजन्ट, उसके सहायक और अन्य कर्मचारी रहते हैं। राज्य में तीन म्युनिसिपैलटियाँ २७ नगर-कौंसिल और १ लोकल बोर्ड है।

राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध — लंका राष्ट्रमण्डल का सदस्य-राष्ट्र है। उसका ब्रिटिश सरकार से वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा राष्ट्रमंडल के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों का है। वह बादशाह के प्रति राजभक्ति या वफादारी रखता है।

लंका और भारत—पहले कहा जा चुका है कि भारत और

लंका में सांस्कृतिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से रहा है। परन्तु विभाजित करके शासन करने की नीति वाले अँगरेजों ने इसे सन् १८०२ से भारत से जुदा कर दिया। अब बर्मा और पाकिस्तान की तरह लंका की भी भारत से पृथक् सरकार है और वह वहाँ बसे हुए भारतीयों के साथ वैसा मित्रता और सद्भावना का व्यवहार नहीं करती जैसा कि खासकर एक पड़ौसी राज्य की सरकार को करना चाहिए, वरन् भेदभावपूर्ण नीति रखती है। लंका में लगभग नौ लाख भारतीय श्रमिक रहते हैं, उन्होंने लंका को समृद्धिशाली बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। लंका की सरकार को चाहिए कि इन्हें नागरिकता के अधिकार की पूर्ण सुविधा दे, और भारतीयों के वास्ते लंका की नागरिकता की प्राप्ति के लिए समय अथवा सम्पत्ति आदि के कठोर बन्धन न लगावे। भारतवर्ष लंका का एक पड़ौसी राज्य ही नहीं है, यह एशिया का महान राष्ट्र है, और निकट भविष्य में यह एशिया का नेतृत्व करनेवाला तथा संसार में अपना विशेष स्थान प्राप्त करनेवाला है। ऐसे राज्य के साथ घनिष्ट मित्रता का सम्बन्ध रखना स्वयं लंका के हित के लिए आवश्यक है। आशा है, लंका की सरकार विवेक और गम्भीरता से काम लेगी।

परिशिष्ट

राष्ट्रमंडल के उद्देश्य की पूर्ति कैसे हो ?

अगर राष्ट्रमंडल की कमजोरियों को दूर कर इसका संगठन दृढ़ किया जाय तो यह विश्व-राज्य की स्थापना में एक आवश्यक और महत्वपूर्ण कदम हो सकता है और शान्ति के पथ में संसार का नेतृत्व कर सकता है। —*लोकवाणी*

पहले बताया जा चुका है कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य-राष्ट्रों ने यह घोषणा की है कि वे राष्ट्रमण्डल के समान और स्वतंत्र सदस्यों की

हैसियत से शान्ति, आज़ादी और उन्नति की प्राप्ति में स्वतंत्रता पूर्वक सहयोग करने के लिए संगठित हुए हैं। राष्ट्रमण्डल के इस उद्देश्य की पूर्ति कैसे हो? पहले इसकी वर्तमान अवस्था को समझलें।

वर्तमान अवस्था—राष्ट्रमण्डल इस समय कुल मिला कर आठ स्वतंत्र राज्यों का एक ढीला-ढाला संगठन है। यह न तो कोई राज्य है, और न इसका कोई लिखित विधान है। इसकी न कोई व्यवस्थापक सभा है, न न्यायालय, और न कोई सेना ही। यह किसी खास निर्धारित योजना के अनुसार नहीं बना है, ऐतिहासिक घटनाओं ने इसका निर्माण किया, तथा समय-समय पर इसका संशोधन या विकास किया। यह आरम्भ में ब्रिटिश साम्राज्य था। पीछे इसने अपने परपीड़न और शोषण सूचक 'साम्राज्य' शब्द को तिलांजलि देकर 'ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल' नाम ग्रहण किया। अब तो भारत, पाकिस्तान और लंका के इसके सदस्य बन जाने पर इसका अँगरेजी रूप भी समाप्त हो गया और यह केवल राष्ट्रमण्डल कहलाता है। इस प्रकार यह एक विकाश-शील संस्था है।

इसकी न्यूनताएँ—परन्तु अभी यह कई विकारों से ग्रस्त है। यदि इसे अपने आदर्श को प्राप्त करना हो तो इन विकारों को दूर करना आवश्यक है। राष्ट्रमण्डल की मुख्य-मुख्य न्यूनताएँ या दोष ये हैं—

१—इंगलैंड का उपनिवेशवाद या साम्राज्यवाद

२—वर्ण-विद्वेष

३—सदस्य राष्ट्रों का आपसी संघर्ष।

अब हम इन पर संक्षेप में प्रकाश डालते हैं।

इंगलैंड का साम्राज्यवाद—इंगलैंड के उपनिवेश विभाग के अधीन, संसार के विविध भागों में बिखरे हुए सैकड़ों प्रदेशों का विचार कीजिए, यह स्पष्ट हो जायगा कि जिस राष्ट्रमंडल का एक सदस्य ऐसा प्रतिगामी और दूसरों की आर्थिक और राजनैतिक

जागृति को दमन करने वाला हो, वह स्वतंत्रता-प्रेमी राष्ट्रों का संगठन होने का दम नहीं भर सकता। यदि इंगलैंड अपने साथी सदस्य-राष्ट्रों के सामने अपनी सचाई का प्रमाण देना चाहता है तो उसके लिए उक्त सब उपनिवेशों को उनके जन्म-सिद्ध अधिकार—स्वराज्य—से वंचित करना किसी भी दशा में शोभा नहीं देता। पर अभी तो स्थिति यह है कि संयुक्त राष्ट्र-संघ ('यूनो') में इंगलैंड आदि ने अपने अधीन प्रदेशों की नियमित जानकारी तक देने से इन्कार कर दिया, उन्हें संयुक्त राष्ट्र-संघ के तत्वावधान में सौंपने या उन्हें धीरे-धीरे किन्तु निश्चित तौर पर और निर्धारित समय में स्वतंत्र करने का तो प्रश्न ही दूर रहा। याद रखना चाहिए कि लोक सत्ता का युग है। समय आएगा कि इंगलैंड को विवश होकर इन उपनिवेशों को आजाद करना पड़ेगा। पर बात तब है कि यह कार्य स्वेच्छा और प्रसन्नता पूर्वक किया जाय।

वर्ण विद्वेष—वर्ण-विद्वेष की भावना से इंगलैंड भी सर्वथा मुक्त नहीं है, पर उपनिवेशों में तो यह रोग बहुत ही बढ़ा हुआ है। वहाँ भारतवासियों तथा अन्य रंगदार जातियों के आदमियों को जाकर रहने का अधिकार नहीं है, यद्यपि उनका क्षेत्रफल बहुत अधिक है, और वहाँ की पैदावार से जितनी जनता का निर्वाह हो सकता है, उसकी अपेक्षा वहाँ बहुत कम लोगों की आबादी है। वे अनगोरों का निवास पसन्द नहीं करते, और जो भारतवासी वहाँ जाकर रहने लग गए हैं, उन्हें निकालने के लिए तरह-तरह के उपाय काम में लाते हैं। खासकर दक्षिण अफ्रीका का यूनियन यह चाहता है कि उन्हीं भारतवासियों को बराबरी का अधिकार दिया जाय, जो योरपीय सभ्यता को अपनालें; दूसरे भारतवासी वहाँ से निकाल दिए जायँ। राष्ट्रमंडल के सदस्यों और खासकर इंगलैंड को चाहिए कि दक्षिण अफ्रीका आदि उपनिवेशों पर दबाव डालकर उनकी नीति भारतवासियों के अनुकूल बनावें।

आपसी संघर्ष—राष्ट्रमंडल के सदस्यों में आपसी मनमोटाव ही नहीं, संघर्ष मौजूद है। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रति वर्ण-

विद्वेष प्रचंड रूप में है। आस्ट्रेलिया में गैर-आस्ट्रेलिया वालों के प्रति बर्ती जाने वाली नीति चिन्तनीय है। पाकिस्तान और भारत का कश्मीर में द्वन्द चल रहा है। लंका की हिन्दुस्तानियों के प्रति भेद-भाव की नीति बनी हुई है। जिस परिवार के सदस्य आपस में लड़ने-झगड़ने में ही अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे हों, वह किसी महान उद्देश्य की पूर्ति कैसे कर सकता है। इस प्रकार राष्ट्रमंडल के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह अपने सदस्यों में सद्भावना और सौहार्द बढ़ावे।

विशेष वक्तव्य—हमने राष्ट्रमंडल के कुछ दोषों के निवारण के सम्बन्ध में विचार किया। इसी प्रकार इस संस्था की अन्य त्रुटियों या न्यूनताओं को दूर करने के विषय में विचार किया जा सकता है। इसके सदस्य राष्ट्रों को चाहिए कि अपना-अपना विकास करने के साथ सामूहिक विकास का प्रयत्न करें तथा विश्व-हित का लक्ष्य रखें। अपनी विदेश-नीति, व्यापार-नीति आदि निर्धारित करने में अपने निजी स्वार्थ का ध्यान न रख कर व्यापक दृष्टिकोण से काम लें, कोई सैनिक या अन्य प्रकार की गुटबन्दी न करें और संसार के नव-निर्माण और शान्ति का प्रयत्न करते हुए विश्व-संघ की रचना का मार्ग प्रशस्त करें। तभी इस संस्था का नाम सार्थक होगा, और इसके उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी।